माणिकचन्द्र दि० जैन ग्रन्थमाला : ग्रन्थांक ५१

श्रीविद्यानन्दिविरचितम्

सुदर्शनचरितम्

सम्पादक

डॉ० हीरालाल जैन

एम० ए०, डी० लिट्०

प्रकाशक

भारतीय ज्ञानपीठ

माणिकचन्द्र दि० जैन ग्रन्थमाला
ग्रन्थमाला सम्पादक
डॉ० हीरालाल जैन, डॉ० आ० ने० उपाध्ये

प्रकाशक
भारतीय ज्ञानपीठ
३६२०।२१ नेताजी सुभाष मार्ग, दिल्ली–६

प्रथम संस्करण
वीर निर्वाण संवत् २४९६
विक्रम संवत् २०२७
सन् १९७०
मूल्य तीन रुपये

मुद्रक
सन्मति मुद्रणालय,
वाराणसी

Māṇikachandra D. Jaina Granthamālā : No. 51

SUDARSANACARITAM

of

Śri Vidyānandi

Edited by

Dr. Hira Lal Jain

M. A , D. Litt.

Published by

BHĀRATĪYA JÑĀNAPĪTHA

विषयानुक्रमणिका

●

GENERAL EDITORIAL

The *Sudarśana-caritam* of Vidyānandi gives the biography of Sudarśana-muni. According to the Jaina tradition, Sudarśana was the fifth Antakṛta Kevalin of Mahāvīra, the 24th Tīrthākara. He practised severe penances, endured many *upasargas* or oppressions and attained omniscience and Liberation or *mokṣa* The biographies of such saints are put together in the eighth Anga, namely, *Antakṛt-daśānga.* An indication of this is available in the present text of the Ardhamāgadhī canon.

The biography of Sudarśana is narrated to glorify the *pañca-namaskāra-mantra* This Namokāra Mantra is to Jainas what the Gāyatrī is to the followers of the Vedic tradition. It stands accepted in all the schools and sects of the Jainas. It occupies the first place in meditation, ritual, recitation and religious rites. In a short form it is found in the Khāravela inscription (2nd century B. C); and as a *mangala* at the beginning, it occurs in the *Ṣaṭkhaṇḍāgamasūtra* of Puṣpadanta (2nd century A. D.). It is explained in details by Vīrasena. It will be seen from the book : *Maṅgala Mantra—Eka anucintana* by Dr. NEMICHANDRA SHASTRI, how this Mantra is employed in mystic and miraculous contexts.

The career of Sudarśana is described in his five *bhavas* or births, which are described in details by the Editor in his Hindi Introduction. The soul of Sudarśana in the first Bhava was a Bhilla chief, Vyāghra by name; in the second, a dog in a *gokula*, i. e., cowherds' colony, after hearing some religious instruction, the dog was reborn, in the third Bhava, as a man, a hunter's son, and in the fourth, a cowherd, Subhaga by name, who used to tend the cows of a banker, Jinadatta. Subhaga made his life fruitful by receiving and concentrating on the Namokāra Mantra from a pious saint. Consequently, Subhaga was reborn as Sudarśana in bankers' family. He lived in plenty and faced many trials; but he was neither tempted by pleasures nor cowed down by calamities. Following the highest ideal of Ātma-saṃyama, Self-restraint, he attained the higher status of non-attachment and omniscience followed by Moksa.

In earlier literature, so far available, Sudarśana's career is found illustrated in the *(Bhagavatī) Ārādhanā* of Śivārya (Gāthā No. 762). This illustration is expanded into a regular tale by Hariṣeṇa (A. D. 932–3) in his *Bṛhat-Kathākośa* (Singhi Jain Series, No. 17, Bombay 1943), Story No. 60, the colophon of which runs thus :

> *iti śrī-Jina-namaskāra-samanvita-Subhaga-gopāla-kathānakam idam.*

The next source is the *Kahākosu* (ed. by H L. JAIN, Prakrit Texts Series, No. 13, Ahmedabad 1969) of Śrīcandra (c. 1066) in Apabhraṃśa. Though it follows the *Kathākośa* of Hariṣeṇa, it has its specialities of language, style and poetic qualities. The story of Sudarśana is found in 16 Kaḍavakas in the 22nd Saṃdhi.

Devoted to this very topic is the *Sudamsanacariu* (edited by Dr. H.L. JAIN and published by the Vaishali Institute) in Apabhramśa by Nayanandi who composed it in Dhārā at the time of Bhoja in Sam. 1100, i. e., c. A. D. 1043. Nayanandi shows remarkable skill in metres, a large variety of which he has employed in this work in a poetic style. It seems that he composed this poem as if to illustrate so many metrical forms.

Rāmacandra Mumuksu also gives the story of Sudarśana in his *Puṇyāśrava-kathākośa* to illustrate the efficacy of the Namaskāra Mantra.

The present work in Sanskrit comes after all these and gives the biography of Sudarśana in details. The author is Vidyānandi about whom we know good many details (already given by the Editor in his Hindi Introduction). He hailed from a branch of the Prāgvāta family; and the name of his father was Harirāja. He was initiated into the order by Devendrakīrti of the Surat branch of the Balātkāra-gaṇa. He visited many places and was respected everywhere He composed this *Sudarśana-carita* in the vicinity of Surat, in *c*. 1456, say about the middle of the 15th century A D.

Dr. HIRALALAJI JAIN has edited this work from a single Ms. from his own collection. As an experienced editor he has given us the text in an authentic form. His Introduction clearly marks out the place of Vidyānandi's *Sudarśana-carita* in the available material dealing with Sudarśana and brings to light some important details about Vidyānandi who, as a Bhaṭṭāraka, has played a significant role in the contemporary religious life of the community. Our sincere thanks are due to Dr. HIRALALAJI for kindly contributing this volume to the Mānikachandra Granthamālā.

It is very generous of Shri SAHU SHANTI PRASADAJI and his enlightened wife Smt. RAMA JAIN to have patronised the publication of this Granthamālā which has brought to light many unpublished works. It is both an opportunity and a challenge to all earnest workers in the field of Jaina literature. Many small and big works in Sanskrit, Prākrit and Apabhraṁśa still lie neglected in Jaina Bhaṇḍāras; and we earnestly appeal to scholars to edit them and present them in a neat form : this is a duty which we owe to our Ācāryas who have left for us a great heritage in our literature.

A. N. Upadhye

Kolhapur
22-4-1970

प्रस्तावना

सुदर्शन मुनि का जैन परम्परा में स्थान

प्रस्तुत ग्रन्थ-रचना का विषय है सुदर्शन मुनिके चरित्रका वर्णन। ये मुनि जैन परम्परामें महावीर तीर्थंकरके पाँचवें अन्तकृत् केवली माने गये हैं। (३, ३) इन मुनियोकी यह विशेषता है कि वे घोर तपस्या कर एवं नाना उपसर्गोंको सहन कर उसी भवमें केवलज्ञान द्वारा संसारकी जन्म-मरण परम्पराका अन्त करके मोक्ष प्राप्त करते हैं। ऐसे मुनियोके चरित्र जैन द्वादशांग आगमके आठवें अंग अन्तकृत्-दशागमें संकलित किये गये थे। उनके संकेत वर्तमान अर्धमागधी आगम-में भी पाये जाते हैं।

नमोकार मन्त्र का महत्त्व

प्रस्तुत काव्यका विशेष धार्मिक उद्देश्य है सुदर्शन मुनिके चरित्र द्वारा जैन-धर्मके महामन्त्र पंच नमोकार मन्त्रकी महिमा प्रदर्शित करना। इसी कारण ग्रन्थके सभी अधिकारोंकी पुष्पिकाओंमें उसे पंचनमस्कार माहात्म्य प्रदर्शक कहा गया है। पंच नमोकार मन्त्र जैनधर्मका प्राण है। उसका जैनधर्ममे वही स्थान है जो वैदिक परम्परामें गायत्री मन्त्रका है। जैनियोके सभी सम्प्रदायोमें इसकी समान रूपसे मान्यता है। जप व पूजा-पाठ आदि क्रियाओमें इस मन्त्र को प्रथम स्थान दिया जाता है। इसका संक्षिप्त रूप खारवेलके शिलालेख (ई० पू० द्वितीय शती) में तथा पुष्पदंत कृत षट्खण्डागमसूत्रके आदि मंगलके रूपमें पाया जाता है। (ई० द्वितीय शती)। और उसपर वीरसेनकृत विस्तृत टीका भी है। इस मन्त्रके आधारपर कैसी-कैसी मान्त्रिक और तान्त्रिक मान्यताएँ विकसित हुई हैं, इनका विवरण पंडित नेमिचन्द्र जैन कृत 'मंगल मन्त्र नमोकार–एक अनुचिन्तन'[१] शीर्षक ग्रन्थमें देखा जा सकता है। ग्रन्थमें सुदर्शन मुनिके पाँच भवान्तरोका उल्लेख है।

१. भारतीय ज्ञानपीठ द्वारा प्रकाशित

प्रथम भवमें वे विन्ध्यगिरिमें व्याघ्र नामक भिल्लराज थे। दूसरे जन्ममें वे एक गोपालके कूकर हुए। उनके कानोंमें कुछ धार्मिक उपदेशोंकी ध्वनि पड़ जानेसे उन्होंने तीसरे जन्ममें नर भव पाया। और वे एक व्याधके पुत्र हुए। चौथे जन्ममें वे सुभग नामक गोपाल हुए। वे चम्पापुरीके सेठ जिनदत्तकी गौएँ चराते थे। प्रसंगवश उन्होंने एक मुनिराजके प्रति श्रद्धा व्यक्त की और उन्हीके मुखसे नमो-कार मन्त्रको पाकर उसे ही अपने जीवनकी आराधनाका विषय बना लिया। उसीके प्रभावसे वे अपने पाँचवें भवमें श्रेष्ठी पुत्र सुदर्शनके रूपमें प्रकट हुए। उन्हें खूब वैभव भी मिला और घोर यातनाएँ भी सहनी पड़ीं। किन्तु वे न तो वैभव और भोग-विलासके अवसरोंसे प्रलोभित हुए और न उसके निषेधसे उत्पन्न क्लेशों और पीडाओंसे घबराये। आत्मसंयमके उच्चतम आदर्शका अनुसरण करते हुए उन्होंने वीतरागता और सर्वज्ञताकी वह स्थिति प्राप्त कर ली जो संसारसे मुक्ति पानेके लिए आवश्यक होती है। (८ : ४० आदि)।

सुदर्शन चरित सम्बन्धी साहित्य

उपलभ्य प्राचीन साहित्यमें सुदर्शन मुनिके जीवन चरित्रका संकेत हमें शिवार्य कृत मूलाराधना (भगवती आराधना) मे मिलता है। यहाँ कहा गया है कि—

> अण्णाणी वि य गोवो आराधित्ता मदो नमोक्कारं।
> चंपाए सेट्ठिकुले जादो पत्तो य सामन्नं ॥ (७६२)

अर्थात् अज्ञानी होते हुए भी सुभग गोपालने नमोकार मन्त्रकी आराधना की। जिसके प्रभावसे वह मरकर चम्पानगरके श्रेष्ठिकुलमें (सुदर्शन सेठके रूपमें) उत्पन्न हुआ और वह श्रमण मुनि होकर श्रमणत्वके फलस्वरूप मोक्ष को प्राप्त हुआ।

भगवती आराधनामें दृष्टान्तोंके रूपसे सूचित कथाओंको विस्तृत रूपसे वर्णन करनेवाली प्रमुख दो रचनाएँ उपलब्ध हुई हैं। पहली रचना हरिषेणाचार्य रचित बृहत् कथाकोश है (डॉ० आ० ने० उपाध्ये द्वारा सम्पादित सिंघी जैन ग्रन्थमाला —१७, बम्बई—१९४३) इसमें कुल १५७ कथानक हैं। जिनकी रचना संस्कृत-

में हुई है। इसमें ६०वीं कथा सुभग गोपाल शीर्षक है और वह १७३ पद्यों में पूर्ण हुई है। उसके अन्तमें कहा गया है :

"इति श्रीजिननमस्कारसमन्वितसुभगगोपालकथानकमिदम्"

इस ग्रन्थकी रचना उसकी प्रशस्तिके अनुसार विक्रम संवत् ९८९ तथा शक संवत् ८५३ में हुई थी।

दूसरी रचना मुनि श्रीचन्द कृत कहाकोसु (कथाकोश) है जो हाल ही प्रकाश में आयी है (डॉ० ही० ला० जैन द्वारा सम्पादित। प्राकृत ग्रन्थ परिषद –१३ अहमदाबाद, सन् १९६९)। इसकी रचना अपभ्रंश पद्योंमें हुई है और उसमें ५३ संधियाँ हैं। जिनमे १९० कथाओं का समावेश है। अधिकांश कथानक उपर्युक्त हरिषेण कृत कथाकोशके समान ही हैं। तथापि भाषा, शैली एवं काव्य गुणोंके कारण इस रचनाकी अपनी विशेषता है। यहाँ सुभग गोपाल व सुदर्शन सेठका चरित्र २२वीं संधिके १६ कडवकोंमें सम्पूर्ण हुआ है। यद्यपि इस ग्रन्थमें उसकी रचना-कालका उल्लेख नही है तथापि इन्ही श्रीचन्द मुनिका एक दूसरा ग्रन्थ भी पाया जाता है जिसका नाम दंसणकहरयणकरंड (दर्शनकथा रत्नकरंड) है और उसमें उसका रचनाकाल विक्रम संवत् ११२३ निर्दिष्ट है। अतएव उनका प्रस्तुत कथाकोश इसी समयके कुछ काल पश्चात् रचित अनुमान किया जा सकता है।

इसी विषयकी तीसरी रचना नयनन्दि कृत सुदंसणचरिउ (सुदर्शन चरित) है। यह अपभ्रंश भाषाका एक महाकाव्य कहा जा सकता है। यह काव्य गुणोंसे भरपूर है। यों तो समस्त अपभ्रंश रचनाएँ अपने लालित्य एवं छन्द-वैचित्र्यके लिए प्रसिद्ध हैं तथापि यह काव्य तो ऐसे अनेक विविध छन्दोंसे परिपूर्ण पाया जाता है कि जिनका अन्यत्र प्रयोग व लक्षण प्राप्त नही होते हैं। कहीं-कहीं तो महाकविने स्वयं अपने छन्दोके नाम निर्दिष्ट कर दिये हैं। ऐसा प्रतीत होता है कि कविने अपना छन्द कौशल प्रकट करनेके लिए ही इसकी रचना की हो। यह काव्य १२ संधियोंमें समाप्त हुआ है। और ग्रन्थकी प्रशस्तिके अनुसार ही उसकी रचना अवन्ति (मालवा) प्रदेश की राजधानी धारा नगरीके बडविहार नामक जैन मन्दिरमें राजा भोजके समय विक्रम संवत् ११०० में हुई थी। इस

प्रकार इस काव्यका रचनाकाल हरिषेण कृत कथाकोशके पश्चात् व श्रीचन्द्र कृत कथाकोशके लगभग २५-३० वर्ष ही पूर्व सिद्ध होता है।

रामचन्द्र मुमुक्षु कृत पुण्यास्रव कथाकोशमे पंच-नमस्कार मन्त्रकी आराधनाका फल प्रकट करनेवाली आठ कथाएँ हैं जिनमें सुदर्शन सेठके अतिरिक्त सुग्रीव बैल, बन्दर, विन्ध्यश्री, अर्धदग्ध पुरुष, सर्प-सर्पिणी, कीचडमें फँसी हस्तिनी और दृढसूर्य चोरके कथानक भी हैं।

उक्त रचनाओंके पश्चात् संस्कृतमें सुदर्शन विषयक एक पूर्ण चरित ग्रन्थ प्रस्तुत रचना है, जिसके रचनाकालके सम्बन्धमे आगे लिखा जाता है।

ग्रन्थकार व रचनाकाल

प्रस्तुत संस्कृत सुदर्शन-चरितके कर्ताने अपना नाम-निर्देश तथा गुरु-परम्पराका कुछ परिचय अपनी रचनाके आदिमें, प्रत्येक अधिकारकी अन्तिम पुष्पिकामें तथा अन्तिम प्रशस्तिमें दिया है। आदिमें समस्त तीर्थंकरो, सिद्धों, सरस्वती, जिनभारती व गौतम आदि गणधरोंकी वन्दना करनेके पश्चात् उन्होंने कुन्दकुन्द, उमास्वाति, समन्तभद्र, पात्रकेसरी, अकलंक, जिनसेन, रत्नकीर्ति और गुणभद्रका स्मरण किया है, और तत्पश्चात् भट्टारक प्रभाचन्द्र और सूरिवर देवेन्द्रकीर्तिको क्रमशः नमन करके कहा है कि ये जो दीक्षा रूपी लक्ष्मीका प्रसाद देनेवाले मेरे विशेष रूपसे गुरु हैं, उनका सुसेवक मैं विद्यानन्दी भक्ति सहित वन्दन करता हूँ। (१, ३१) इसके आगे उन्होंने आशाधर सूरिका भी स्मरण किया है, तथा प्रत्येक पुष्पिकामें प्रस्तुत कृतिको मुमुक्षु-विद्यानन्दि-विरचित कहा है। ग्रन्थके अन्तिम पद्योमें ग्रन्थकारकी गुरु परम्पराका और भी स्पष्ट व विस्तृत वर्णन पाया जाता है। वहाँ कहा गया है कि मूलसंघ, भारती गच्छ, बलात्कार गण व कुन्दकुन्द मुनीन्द्रके वंशमे महामुनीन्द्र प्रभाचन्द्र हुए। उनके पट्टपर मुनि पद्मनन्दी भट्टारक और उनके पट्टपर देवेन्द्रकीर्ति मुनि चक्रवर्ती हुए, जिनके चरण-कमलोंकी भक्तिसे युक्त विद्यानन्दीने इस चरित्रकी रचना की। विद्यानन्दीके पट्टपर मल्लिभूषण गुरु हुए तथा श्रुतसागरसूरि सिंहनन्दी भी गुरु हुए। गुरुके उपदेशोंसे इस शुभ-चरित्रको नेमिदत्तव्रतीने भक्तिसे भावना की। (१२, ४७, ५१) इस परसे इस सुदर्शन चरितके कर्ता विद्यानन्दीकी गुरु-परम्परा निम्न प्रकार पायी जाती है—

मूलसंघ सरस्वती गच्छ, बलात्कारगण, कुन्दकुन्दान्वय–प्रभाचन्द्र, पद्मनन्दी, देवेन्द्र-कीर्ति और विद्यानन्दि (ग्रन्थकार); विद्यानन्दिके चार शिष्य मल्लिभूषण, श्रुत-गर, सिंहनन्दि और नेमिदत्त ।

इस पट्टावलिके अतिरिक्त ग्रन्थमें उसके रचना-काल सम्बन्धी कोई सूचना नही पायी जाती । हाँ, जिस प्राचीन हस्तलिखित प्रतिपरसे प्रस्तुत संस्करण तैयार किया गया है उसकी ग्रन्थ-समाप्ति व अन्तिम पुष्पिकाके पश्चात् लिखा है "शुभं-भवतु" ॥ छ । ग्रन्थ संख्या श्लोक १३६२ ॥ संवत् १५९१ वर्षे असाड (आषाढ) मासे शुक्ल पक्षे ॥ यद्यपि यहाँ यह स्पष्ट सूचित नही किया गया कि उक्त काल निर्देश ग्रन्थ-रचनाका है या प्रति लेखनका तथापि अन्य उपलभ्य प्रमाणो परसे यही प्रमाणित होता है कि वह प्रति लेखन-काल है, रचना-काल नही ।

पूर्वोक्त परम्पराका उल्लेख अन्य अनेक ग्रन्थों तथा शिलालेखोंमें भी पाया जाता है, जिनके लिए देखिए डॉ० जोहरापुरकर कृत भट्टारक सम्प्रदाय (जीवराज जैन ग्रन्थमाला ८, शोलापुर, १९५८) । इसमे बलात्कारगण सबन्धी मूल शिलालेखो व प्रशस्तियोंके पाठ कालक्रमसे उद्धृत है, तथा उनपरसे ज्ञात गुरुपरम्पराओंका परिचय भी व्यवस्थासे कराया गया है । इस सामग्रीके अनुसार बलात्कारगणका सबसे प्राचीन और स्पष्ट उल्लेख उत्तरपुराण टिप्पणमे किया गया है जहाँ विक्रमादित्य संवत्सर १०८०में भोज देवके राज्यमें बलात्कारगणके श्रीनन्दि आचार्यके शिष्य श्रीचन्द्र मुनि द्वारा उस टिप्पण के रचे जानेकी बात कही गयी है ।

धारवाड जिलेके गावरवाड नामक स्थानसे एक ऐसा भी शिलालेख मिला है जिसमें मूल संघ व नन्दिसंघके बलगार गणका उल्लेख है (जै० शि० संग्रह भाग चार १५४. मा० दि० जै० ग्र० ४८ भारतीय ज्ञानपीठ, वाराणसी १९६२) यह शक ९९३ (वि० सं० ११२८) का है । किन्तु इसमे जो आठ आचार्योंकी परम्पराका उल्लेख और उसीके समान एक अगले लेख क्र० १५५ में जो तीन आचार्योंका उल्लेख हुआ है उसपरसे अनुमान होता है कि इस गणका अस्तित्व कोई डेढ़ पौने दो सौ वर्ष पूर्व अर्थात् विक्रम संवत् ९५० के लगभग भी था । बलगार और बलात्कारगण एक ही प्रतीत होते हैं । कालान्तरमें इस गणकी

अनेक शाखाएँ स्थापित हुईं जैसे कारंजा व जेरहटमें सं० १५०० के लगभग, उत्तर भारत की कुछ शाखाएँ सं० १२६४ के लगभग, दिल्ली, जयपुर, ईडर व सूरत शाखाएँ सं० १४५०, नागोर व अंटेर सं० १५८०, भानपुरमें सं० १५१० के लगभग तथा लातूरमें सं० १७०० के लगभग शाखाएँ स्थापित हुईं।

प्रस्तुत ग्रन्थमें बलात्कारगणके जिन आचार्योंका उल्लेख पाया जाता है वे उत्तर भारत तथा सूरतकी शाखा में हुए पाये जाते हैं। उत्तरकी शाखामें प्रभाचन्द्रका काल सं० १३१० से १३८५ तक और पद्मनन्दिका सं० १३८५ से सं० १४५० तक प्रमाणित होता है। पद्मनन्दिके शिष्य देवेन्द्रकीर्तिने सूरतकी शाखाका प्रारम्भ किया। उनका सबसे प्राचीन उल्लेख सं० १४९९ वैशाख कृष्ण ५ का उनके द्वारा स्थापित एक मूर्तिपर पाया गया है। उन्हीके पट्ट-शिष्य प्रस्तुत ग्रन्थके कर्ता विद्यानन्दि हुए; जिनके सम-सामयिक उल्लेख उनके द्वारा प्रतिष्ठित करायी गयी मूर्तियों पर सं० १४९९ से सं० १५३७ तक पाये गये हैं (भट्टा० सम्प्र० क्र० ४२७-४३३)।

विद्यानन्दिके गृहस्थ जीवन सम्बन्धी कोई वृत्तान्त ग्रन्थ-प्रशस्तियों या अन्य लेखोंमे नहीं पाया जाता। केवल एक पट्टावली (जैं० सि० भास्कर १७ पृ० ५१ व भट्टा० सम्प्र० क्र० ४३९) में अष्टशाखा-प्राग्वाटवंशावतंस तथा 'हरिराज-कुलोद्योतकर' कहा गया है जिससे ज्ञात होता है कि वे प्राग्वाट (पोरवाड) जाति के थे, तथा उन के पिता का नाम हरिराज था। पोरवाड जाति में अथवा उस के किसी एक वर्ग में आठ शाखो की मान्यता प्रचलित रही होगी, जैसा कि परवार जाति मे भी पाया जाता है।

प्राग्वाट जाति का प्रसार प्राचीन कालसे गुजरात प्रदेशमे पाया जाता है। इसी प्रदेश की प्राचीन राजधानी श्रीमाल (आधुनिक भीनमाल थी) जो आबूके प्रसिद्ध जैन मन्दिर विमलवसहीके निर्माता प्राग्वाटवंशीय मंत्री विमलशाहका पैत्रिक निवास स्थान था। इस प्राग्वाटजातिमें विद्यानन्दिके गुरु भट्टारक देवेन्द्र-कीर्तिका विशेष मान रहा पाया जाता है। उन्होंने पोरपाटान्वयको अष्टशाखावाले एक श्रावक द्वारा संवत् १९९३ में एक जिन मूर्तिकी स्थापना करायी थी (भट्टा० सम्प्र० ४२५) संवत् १६४५ में धर्मकीर्ति द्वारा प्रतिष्ठापित मूर्तिपर पोरवट्ट

छितिरा मूर, गोहिल गोत्रके गृहस्थ साधु दोनूका उल्लेख है। (लेख ५२५) प्राग्वाट, पौरपाट व पौरवाड एक ही जातिके वाचक हैं। आश्चर्य नही जो भट्टा० देवेन्द्रकीर्ति भी इसी जातिमे उत्पन्न हुए हो और उन्हीके प्रभावसे विद्यानन्दि उनके द्वारा दीक्षित हुए हो। सं० १४९९ के मूर्तिलेखमे उन्हें मुनि देवेन्द्रकीर्तिके शिष्य मात्र कहा गया है। किन्तु सं० १५१३ के मूर्तिलेखमें उनका श्री देवेन्द्र-कीर्ति-दीक्षित आचार्य श्री विद्यानन्दि रूपसे उल्लेख हुआ है। सं० १५३७ के मूर्तिलेखमे वे 'देवेन्द्रकीर्तिपदे' विद्यानन्दि कहे गये है। अतः उससे पूर्व ही वे अपने गुरुके पट्टपर अधिष्ठित हो चुके थे।

विद्यानन्दिने भ्रमण भी खूब किया था। पट्टावलीके अनुसार उन्होने सम्मेदशिखर, चम्पा, पावा, ऊर्जयन्त (गिरनार) आदि समस्त सिद्ध क्षेत्रोंकी तीर्थ-यात्रा की थी। तथा उनका सम्मान राजाधिराज महामण्डलेश्वर वज्राग-गंग-जयसिंह-व्याघ्र-नरेन्द्र आदि द्वारा किया गया था। इन माण्डलिक राजाओंकी ऐतिहासिक जानकारी उपलब्ध नही है। उनके द्वारा प्रतिष्ठित करायी गयी मूर्तियोमे हूमड जातीय श्रावकोके अधिक उल्लेख है। अन्य जाति व वर्ग सम्बन्धी उल्लेखोमे काष्ठासंघ-हुंबड वंश, सिंहपुरा जाति राइकवाल (रैकवाल) जाति, गोलाश्रंगार (गोलसिंगारे) वंश, पल्लीवाल जाति तथा अग्रोतक अन्वय (अगरवाल) के नाम आये हैं।

अधिकांश लेख मूर्ति-प्रतिष्ठा सम्बन्धी होनेसे स्पष्ट है कि इस कालके भट्टारको द्वारा धर्मप्रचार हेतु यह कार्य विशेष रूपसे अपनाया गया था।

उक्त समस्त उल्लेखोसे विद्यानन्दिके कार्य-कलापोंका काल विक्रम सं० १४९९ से १५३८ तक पाया जाता है। इस कार्यकालके भीतर प्रस्तुत रचना कब और कहाँ की गयी इसका संकेत हमें प्रस्तुत ग्रन्थके अन्तिम अधिकारके ४२वें पद्यमे मिलता है। जहाँ कहा गया है कि इस पवित्र सुदर्शन चरित्रकी रचना उन्होंने गंधारपुरीके छत्र-ध्वजा आदिसे सुशोभित जैन मन्दिरमें की थी। गंधारनगर या गंधारपुरीका उल्लेख सेन गणकी सूरत शाखाके भट्टारकों सम्बन्धी अनेक लेखोंमें प्राप्त होता है। महीचन्द्रके शिष्य जय-सागर द्वारा संवत् १७३२ मे रचित सीताहरण नामके गुजराती रासमें गंधारनगरका उल्लेख है तथा इस ग्रन्थकी

रचना सूरत नगरके आदिनाथ मन्दिरमें हुई कही गयी है। गणितसारसंग्रह की एक प्रतिकी दान प्रशस्तिमें कहा गया है कि वह प्रति आचार्य सुमतिकीर्तिके उपदेशसे हुंबड जातिके एक श्रावक द्वारा सं० १६१६ में (गंधार शुभस्थानके आदिनाथ चैत्यालय) में दी गयी थी। विद्यानन्दिके शिष्य श्रुतसागर कृत लक्ष्मण पंक्ति कथामें भी गंधार नगरका उल्लेख है। स्वयं विद्यानन्दि द्वारा प्रतिष्ठापित एक मेरुमूर्तिपर लेख है कि उसे गांधार वास्तव्य हुंबड-जातीय समस्त श्रीसंघने सं० १५१३ में प्रतिष्ठित करायी थी। इन उल्लेखोंसे ज्ञात होता है कि यह गंधारपुरी या तो सूरत नगरका ही नाम था, या उसके किसी एक भागका अथवा उसके समीपवर्ती किसी अन्य नगरका, और वहीं सं० १५१३ के लगभग विद्यानन्दि द्वारा प्रस्तुत ग्रन्थकी रचना हुई थी।

आदर्श प्रति का परिचय

सुदर्शन चरितका प्रस्तुत सस्करण मेरे सग्रह की एक मात्र प्रति परसे किया गया है। यह इस कारण संभव हुआ है कि यह प्रति प्रायः शुद्ध है, तथा भाषा संस्कृत होनेके कारण लिपिकारकृत वर्ण-मात्रादि सम्बन्धी अशुद्धियाँ सरलतासे शुद्ध की जा सकी हैं। प्रतिमें अनुनासिक वर्णोंका प्रयोग अव्यवस्थित है, किन्तु उसे मूर्तिदेवी ग्रन्थमाला सम्बन्धी पाठसंशोधनके नियमोंके अनुसार रखनेका प्रयत्न किया गया है। आदर्श प्रति १२ इंच लम्बी व ५ इंच चौड़ी है। प्रत्येक पृष्ठपर ११ पंक्तियाँ, तथा प्रत्येक पंक्तिमें लगभग ४० अक्षर है पत्र संख्या ५७ है। प्रत्येक पृष्ठके दायें-बाँये तथा नीचे-ऊपर एक इंचका हासिया है, जिसपर गुजरातीमें टिप्पण लिखे गये हैं। ग्रन्थके आदिमे ॐ नमः सिद्धेभ्यः तथा अतिम पुष्पिकाके पश्चात् ॥श्रुभंभवतु॥ ॥ठ॥ ॥ग्रंथ संख्या श्लोक १३६२॥ ॥संवत् १५९१ वर्षे अखाड मासे शुक्ल पक्षे। इससे ज्ञात होता है कि प्रति संवत् १५९१ आषाढशुक्ल पक्षमें लिखी गयी थी।

सुदर्शन-चरित : विषय-परिचय

अधिकार १–महावीर-समागम

वृषभादि चौबीस तीर्थंकरोंकी वन्दना (१–१५) त्रिकालवर्ती अन्य जिनेन्द्रोंसे शक्तिको प्रार्थना (१६) सिद्धोंकी संस्तुति (१७) सरस्वतीकी संस्तुति (१८) जिन-वाणीकी स्तुति (१९) गौतम आदि गणधरोंको नमस्कार (२०) कुन्दकुन्द, उमास्वामी, समन्तभद्र, पात्रकेसरी, अकलंक, जिनसेन, रत्नकीर्ति, गुणभद्र, प्रभा-चन्द्र, देवेन्द्रकीर्ति, आशाधर मुनियोंका संस्मरण तथा ग्रन्थ रचनाकी प्रतिज्ञा (२१–३३), आत्मविनय व सुदर्शन चरितका माहात्म्य (३४-३६), जम्बूद्वीप, भरतक्षेत्र, मगधदेश व राजगृह नगर (३७-५७), राजा श्रेणिक, रानी चेलना व वारिषेण आदि पुत्रोंका वर्णन (५८-६८) विपुलाचलपर महावीर स्वामीका आगमन व उसका पर्वत तथा पशुओंपर प्रभाव (६९-७७), वनपालका राजा श्रेणिकके संवाद व राजाका प्रजाजनों सहित चलकर समवसरण दर्शन (७८-८९), समवसरणमें मानस्तम्भ, सरोवर, खातिका, पुष्पवाटिका, गोपुर, नाट्यशाला, उपवन, वेदिका सभा, रूप्यशाला, कल्पवृक्ष-वन, हर्म्यावली, महास्तूप, स्फटिक-शाला तथा जिनेन्द्रके सभा-स्थानका त्रिमेखलापीठ दिव्य-चमर, अशोक वृक्ष आदि-का वर्णन (९०-११७), श्रेणिक द्वारा जिनेन्द्रकी पूजा व स्तुति (११८-१३१)।

अधिकार २–श्रावकाचार तत्त्वोपदेश

जिनेन्द्र स्तुति (१), श्रेणिक नरेशका गौतमसे धर्म विषयक प्रश्न (२), दर्शन-ज्ञान-चारित्र, अणुव्रत-महाव्रत सप्ततत्त्व, एवं कर्मबन्ध और मोक्ष (३-८८)।

अधिकार ३–सुदर्शन-जन्म-महोत्सव

राजा श्रेणिकका गौतम गणधरसे पंचम अन्तकृत्केवली सुदर्शन मुनिके चरित्र वर्णनकी प्रार्थना (१-४), गौतम स्वामीका उत्तर। अंग देशका वर्णन (५-३०), चम्पापुरी वर्णन (३१-४२), राजा धात्रीवाहनका वर्णन (४३-५१), रानी अभय-

मतीका वर्णन (५२-५५), सेठ वृषभदासका वर्णन (५६-६२), सेठानी जिनदत्ताका वर्णन (६३-६७), सेठानीका स्वप्न तथा पतिसे निवेदन (६८-७२), सेठ वृषभदास द्वारा रानीके स्वप्न सुनकर प्रसन्नता। जिनमन्दिर गमन। ज्ञानी गुरुसे प्रश्न तथा मुनि द्वारा स्वप्नों का फल वर्णन (७३-८३), सेठानीकी प्रसन्नता व गृहगमन (८४-८७), सेठानीका धर्मधारण व धर्मचर्या (८८-९२), पुत्र जन्म और उसका महोत्सव (९३-१०७)।

अधिकार ४–सुदर्शन-मनोरमा-विवाह

बालक सुदर्शनका संवर्धन व सौन्दर्य (१-२६), सुदर्शनका विद्या-ग्रहण (२७-३५), उसी नगरके सेठ सागरदत्त और सेठानी सागरसेनाकी पुत्री मनोरमा और उसका रूप वर्णन (३६-५८), सुदर्शनका अपने मित्र कपिलके साथ नगरका पर्यटन व पूजाके निमित्त जाती हुई मनोरमाके दर्शन (५९-६४) सुदर्शनका अपने मित्र कपिलसे उसके सम्बन्धमें प्रश्न, तथा कपिल द्वारा उसका परिचय (६५-७१), कुमारका मोहित होना। घर आकर शैया-ग्रहण। अन्न-पान विस्मरण। मोहयुक्त प्रलाप (७२-७६), पिताकी चिन्ता तथा कपिलसे कुमारकी दशाके कारणकी जानकारी (७७-७९), पिताका सागरदत्तके घर जाना। वहाँ मनोरमाकी भी काम-दशा (८०-८८), सेठ वृषभदास और सागरदत्तका वार्तालाप। विवाहका प्रस्ताव व स्वीकृति, ज्योतिषीका आगमन एवं विवाह-तिथिका निर्णय। पूजा-अर्चन तथा विवाहोत्सव (८९-११७)।

अधिकार ५–सुदर्शनकी श्रेष्ठिपद-प्राप्ति

दम्पतिके भोगोपभोग व मनोरमाका गर्भधारण व पुत्र-जन्म (१-५) वृषभदास सेठका धर्माचरण। समाधिगुप्त मुनिका आगमन। वनपालका भूपतिसे निवेदन तथा भूपतिका वृषभादि नगरजनों सहित मुनिके दर्शनहेतु तपोवन गमन। मुनि-वन्दन एवं मुनिका धर्मोपदेश (६-२३)। मुनि और श्रावकके भेदसे धर्माचरणका उपदेश (२४-६२), राजा तथा भव्यजनों द्वारा व्रतग्रहण एवं वृषभदास सेठकी वैराग्य-भावना (६३-७३)। सेठकी मुनिसे दीक्षा देनेकी प्रार्थना तथा मुनिकी अमनुति। सेठ द्वारा राजासे सुदर्शनके पालनको प्रार्थना। राजाकी स्वीकृति एवं

सेठका अपने बन्धु-बान्धवोंसे पूछकर दीक्षाग्रहण (७४-८६), सेठानी जिनमती द्वारा आर्यिका-व्रतग्रहण तथा दोनोंकी स्वर्ग-प्राप्ति (८७-९०), सुदर्शनका श्रेष्ठिपद पाकर सुखभोग और धर्माचरण (९१-१०१)।

अधिकार ६–कपिलका प्रलोभन तथा रानी अभयमतिका व्यामोह

सुदर्शनका नगर-भ्रमण। कपिला द्वारा दर्शन व मोहोत्पत्ति (१-६), कपिल के बाहर जानेपर सखीको भेजकर कपिलके ज्वर-पीडित होनेके बहाने सुदर्शन सेठको अपने पास बुलवाना और उससे काम-क्रीडाकी प्रार्थना करना (७-३२), सुर्शदनका चकित होना। एकनारी व्रतका स्मरण एव नपुंसक होनेका बहाना बनाकर छुटकारा पाना (३३-४७)। वसन्तऋतुका आगमन। राजाका वन-क्रीडा हेतु नागरिको सहित वनगमन (४८-५४), रानीका सुदर्शनके रूपपर मोहित होना तथा कपिला द्वारा उसे पुरुषत्वहीन बतलाना (५५-५८)। रानीका मनोरमाको पुत्र सहित देखकर कपिलाके वचनोका अविश्वास तथा सुदर्शनसे रमण करनेकी प्रतिज्ञा (५९-६९), राजभवन आकर रानीका व्याकुल होना। पडिता धात्रीका उसे समझाना। रानीका हठ–आग्रह और पंडिता द्वारा विवश होकर उसकी अभिलाषा पूर्ण करनेका वचन देना (७०-१०८)।

अधिकार ७–अभयाकृत उपसर्ग निवारण व शील-प्रभाव वर्णन

सुदर्शन सेठका धर्म-पालन तथा अष्टमादि पर्वके दिनोंमे उपवास और रात्रिमे श्मशानमे योग-साधन (१-३), यह जानकर पंडिता द्वारा कुंभकारसे सात पुरुषाकार पुतलियोका निर्माण तथा एक पुतलीको लेकर राजमहलके प्रवेशद्वारमें द्वारपालसे झगडा तथा उसपर रानीके व्रत भंग होनेका आरोप लगाकर उससे क्षमा-याचना कराना और इसी प्रकार एक-एक पुतली लेकर समस्त द्वारपालो को वशीभूत कर लेना (४–२०)। अष्टमीके दिन पंडिताका श्मशानमें जाकर सुदर्शन सेठको लुभानेका प्रयत्न करना और उसके शीलमें अटल रहनेपर उसे बल पूर्वक रानीके शयनागारमें पहुँचाना (२१–६२)। अभयारानी द्वारा सुदर्शनको लुभानेका प्रयत्न किन्तु उसके प्रस्तावको अस्वीकार करनेके कारण रानीका पश्चात्ताप। सेठको यथास्थान वापस भेजनेका विचार, किन्तु सूर्योदय समीप होनेसे

पण्डिताकी अस्वीकृति होनेपर रानी द्वारा सेठपर बलात्कारके दोषारोपणका प्रयत्न (६३-८७)। राजा द्वारा रानीकी बात सुनकर सेठको राजद्रोही होनेका अपराधी ठहराना व श्मशानमें ले जाकर प्राणघातका आदेश। (८८-९१)। राजसेवकों-का संशय किन्तु राजादेशकी अनिवार्यताके कारण सेठको श्मशानमें ले जाना (९२-९८)। इस बातसे नगरमें हाहाकार व मनोरमाका श्मशान में जाकर विलाप (९९-११४)। सुदर्शनका ध्यानमें रहते हुए संसारकी अनित्यादि भावनाएँ (११५-१२०)। सेठपर खड्ग प्रहार किये जानेके समय यक्षदेवके आसनका कम्पन। प्रहारोंका स्तम्भ तथा सेठपर पुष्पवृष्टि एवं नगरजनोंका हर्ष (१२१-१२६)। राजा द्वारा अन्य सेवकोंका प्रेषण व उनके भी यक्ष द्वारा कीलित किये जानेपर सैन्य सहित स्वयं आगमन (१२७-१२९)। राज-सेना व यक्षदेव द्वारा निर्मित मायामयी सैन्यके बीच घोर संग्राम (१३०-१३३)। राजाका पराजित होकर पलायन व यक्ष द्वारा उसका पीछा करना (१३४-१३७)। राजाका सुदर्शनकी शरणमें आना और सेठ द्वारा उसकी रक्षा करना (१३८-१४२)। यक्षकी सेना द्वारा सुदर्शनकी पूजा कर यथास्थान गमन। शील प्रभाव वर्णन (१४२-१४५)।

अधिकार ८–सुदर्शन व मनोरमाका पूर्वभव वर्णन

अभया रानीने सेठ सुदर्शनके पुण्य प्रभाव सुनकर भयभीत हो फाँसी लगाकर आत्मघात कर लिया और मरकर पाटलिपुत्रमें व्यन्तरी देवीके रूपमें उत्पन्न। पण्डिता चम्पापुरीसे भागकर पाटलिपुत्रमें देवदत्त नामक वेश्या के पास पहुँची और उसे अपना सब वृत्तान्त सुनाया। देवदत्तने अपनी चातुरीसे सुदर्शनको अपने वशमें करनेकी प्रतिज्ञा की (१-१०), उधर राजा धात्रीवाहनने सच्ची बात जानकर पश्चात्ताप किया, सुदर्शन सेठसे क्षमा याचना की तथा आधा राज्य स्वीकार करनेकी प्रार्थना की (११-१७)। सुदर्शनने राजाको सम्बोधन किया। अपने दुःखको अपने ही कर्मोंका फल बतलाया तथा मुनिदीक्षा लेनेका अपना निश्चय प्रकट किया। (१८-२३), सुदर्शन जिन मन्दिरमें गया। जिनेन्द्रकी पूजा व स्तुति की तथा विमलवाहन मुनिसे अपने पूर्वभव सुननेकी इच्छा प्रकट की (२४-४०)। मुनिने उसके पूर्व भवका इस प्रकार वर्णन किया—भरत क्षेत्र-

के विन्ध्य प्रदेशमें कौशलपुर। वहाँ राजा भूपाल व रानी वसुन्धरा। उनका पुत्र लोकपाल शूरवीर और बुद्धिमान (४१-४४)। एक बार राजाके सिंहद्वार पर रक्ष-रक्षकी पुकार। मन्त्रीने जानकारी दी कि वहाँ से दक्षिण दिशामें विन्ध्य-गिरिपर व्याघ्र भील तथा कुरंगी भीलनीका निवास। व्याघ्रकी क्रूरता व प्रजा पीडन। इस कारण प्रजाकी पुकार (४५-४९)। राजाका उस भीलको पराजित करने हेतु सेनापतिको आदेश। भील राज्य द्वारा सेनापतिका पराजय। राजपुत्र लोकपाल द्वारा व्याघ्र भीलका हनन। व्याघ्रका कूकर योनिमें जन्म और फिर कुछ पुण्यके प्रभावसे चम्पामें नर जन्म और फिर मरकर उसी नगरमे सुभग-गोपाल के रूप में जन्म व वृषभदास सेठ का ग्वाल होना (५०–६२), सुभग गोपालका वनमे मुनिदर्शन (६३-६७)। मुनिके आधार व गुणोंका विस्तारसे वर्णन (६८-८७)। कठोर शीतसे अप्रभावित ध्यानमग्न मुनिको देखकर गोपके हृदयमें आदर भावनाका उदय। अग्नि जलाकर मुनिकी शीतबाधाको दूर करनेका प्रयत्न व रात्रिभर गुरुभक्तिमें तल्लीनता (८८-९४)। प्रात.काल सब कार्योंका साधन सप्ताक्षर महामन्त्र गोपको देकर मुनिराजका आकाश मार्गसे विहार (९४-१०१)। गोपालका सदाकाल उस मन्त्रका उच्चारण व सेठ द्वारा पूछे जानेपर वृत्तान्त कथन। सेठ द्वारा उसकी धर्म बुद्धिकी प्रशसा व उसके प्रति अधिक वात्सल्य भावसे व्यवहार (१०१-१११)। एक बार गोपका वनमे गाय भैंसों-को चराना। भैंसोंका नदी पार चले जाना, उनके लौटाने हेतु गोपालका नदीमें प्रवेश व एक ठूँठसे टकराकर पेट फटनेसे मृत्यु। मन्त्रके स्मरण सहित निदान करनेसे उसका सुदर्शनके रूपमें सेठ वृषभदासके यहाँ जन्म। मन्त्रका प्रभाव वर्णन (११२-१२५), कुरंगी नामक भीलनीका बनारसमें भैंसके रूपमें जन्म फिर धोबीकी पुत्रीके रूपमें और वहाँ किंचित् पुण्यके प्रभावसे मरकर मनोरमाके रूपमें जन्म। धर्मका माहात्म्य (१२५-१३२)।

अधिकार ९–द्वादश अनुप्रेक्षा वर्णन

मुनिराजसे अपना पूर्वभव सुनकर व ससारकी क्षणभंगुरताका विचार करते हुए अध्रुव, अशरण, संसार, एकत्व, अन्यत्व, अशुचित्व, आस्रव, संवर, निर्जरा लोक, बोधि और धर्म इन बारह भावनाओंके स्वरूपका विचार (१-५१)।

अधिकार १०—सुदर्शन का दीक्षाग्रहण और तप

सुदर्शनका अपने पुत्र सुकान्तको अपने पदपर प्रतिष्ठित कर मुनिदीक्षा ग्रहण करना (१-७)। सुदर्शनके चरित्रसे प्रभावित हो राजा धात्रीवाहनका भी अपने पुत्रको राज्य दे मुनि होना। रानियोंका भी तप स्वीकार करना तथा अन्य भव्यजनों द्वारा श्रावकके व्रत अथवा सम्यक्त्व ग्रहण करना (८-१९)। सुदर्शन द्वारा मुनिचर्याका पालन एवं नागरिको द्वारा सुदर्शन मनोरमा एवं राजाके चरित्र-की प्रशसा। आहारदान व भक्ति (२०-४५)। सुदर्शनका ज्ञानार्जन, गुरुभक्ति एवं मुनिव्रतोंका परिपालन (४६-४९)। अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य एवं परिग्रह त्याग इन पाँच व्रतोंका और उनकी पच्चीस भावनाओंका पाँच प्रवचन, माताओं-का पंचेन्द्रिय संयम केशलोंच, परिग्रह-जय तथा वन्दना सामायिक आदि गुणोंका परिपालन (५०-१४८)।

अधिकार ११—केवलज्ञानोत्पत्ति

धर्मोपदेश करते हुए सुदर्शन मुनिका ऊर्जयन्तादि सिद्ध क्षेत्रोको वन्दना कर पाटलिपुत्र नगरमें आहार निमित्त प्रवेश (१—६)। पण्डिता धात्रोके संकेतपर देवदत्ता गणिका द्वारा श्राविकाका वेश धारणकर मुनिराजका आमन्त्रण तथा अपने यौवन और वैभव द्वारा उनका प्रलोभन (७-१६)। मुनि द्वारा संसारके स्वरूप शरीरकी अपवित्रता और क्षणभंगुरता भोगोंकी भयंकरता व वैभवकी चंचलता आदिका उपदेश देकर स्त्री स्वभावका चिन्तन करते हुए ध्यानमें तल्लीनता (१७-३०)। देवदत्ताने मुनिको अपने यौवनादि द्वारा प्रलोभित करनेकी तीन दिन तक चेष्टा की और अन्तत· निराश होकर मुनिराजको श्मशानमें लाकर छोड दिया (३१-३७)। जो अभया रानी आर्तध्यानसे मरकर व्यन्तरी हुई थी उसका विमान आकाश मार्ग-में स्खलित होनेसे उसने मुनिको देखा और उन्हें पहिचान कर बदलेकी भावनासे घोर उपसर्ग करना प्रारम्भ किया। यक्षने आकर मुनिकी रक्षा की। व्यन्तरीने मुनिसे सात दिन तक युद्ध किया और अन्तत. परास्त होकर भाग गयी। (३८-४३) मुनिका निश्चल ध्यान। नाना गुणस्थानों द्वारा कर्मप्रकृतियोंका क्षय (४४-५७)। सुदर्शन मुनि द्वारा क्रमसे कर्म क्षय कर केवलज्ञान तथा वर्धमान तीर्थंकरके तीर्थमें अन्तकृत केवली पदको प्राप्ति (५८-६०)। इन्द्रासनका कम्पायमान होना। देवोंका

आगमन, गन्धकुटी निर्माण, स्तुति तथा धर्मोपदेशकी प्रार्थना (६१-७६)। केवली द्वारा मुनि व श्रावक, आचार्यका तथा तत्त्वों, द्रव्यों व पदार्थका उपदेश (७७-८३) व्यन्तरीका कोप शमन और सम्यक्त्व ग्रहण (८४-८५)। सेठ सुकान्त व मनोरमाका आगमन व मनोरमा का आर्यिका व्रत धारण। पंडिताकी आत्मनिन्दा व व्रतग्रहण। केवलज्ञानकी महिमा (८६-९६)।

अधिकार-१२ सुदर्शन मुनिकी मोक्षप्राप्ति

सुदर्शन केवलीका मोक्ष विहार व धर्मोपदेश व आयुके अन्तमें छत्र चमरादि विभूतिका त्याग कर मौन ध्यान अयोग केवली गुणस्थानकी प्राप्ति। अघाति कर्मोंका क्रमश. क्षय तथा सिद्ध बुद्ध व निराबाध होकर शरीरका त्याग मोक्ष गमन (१-१७)। सिद्धोंके गुण तथा पंचनमस्कार मंत्रका माहात्म्य (१८-३७)। सुदर्शन चरित्रको पढ़ने-पढ़ाने तथा लिखने एवं सुनने वालोंको सुख एवं मोक्षकी प्राप्ति (३८-३९)।

गौतम स्वामीसे यह चरित्र सुनकर राजा श्रेणिक व अन्य नगरवासियोंका राजगृह लौटना (४०-४१)। गंधारपुरीके जैन मंदिरमें इस सुदर्शन चरित्रके रचे जानेकी सूचना (४२)। सुदर्शन चरित्र तथा पंचपरमेष्ठीकी महिमा (४३-४६)। मूलसंघ भारतीय-गच्छ बलात्कार गणके मुनि कुन्दकुन्द के वंशमें प्रभाचन्द्र मुनि उनके पट्ट पर मुनि-पद्मनन्दि भट्टारक उनके पट्टपर देवेन्द्रकीर्ति मुनि उनके शिष्य विद्यानन्दि द्वारा यह चरित्र रचे जानेकी सूचना (४७-४९)। देवेन्द्रकीर्तिके पट्टपर मल्लिभूषण गुरु तथा श्रुतसागर-सूरि सिंहनन्दि गुरुका स्मरण और उसमें मंगल प्रार्थना (५०)। गुरुके उपदेशसे नेमिदत्तव्रती द्वारा इस चरित्रकी भावनाकी सूचना एवं ग्रंथ समाप्ति (५१)।

●

विद्यानन्दि-विरचितं

सुदर्शन-चरितम्

प्रथमोऽधिकारः

प्रणम्य वृषभं देवं लोकालोकप्रकाशकम् ।
अजितं जितशत्रुघ्नं जितशत्रुसमुद्भवम् ॥ १ ॥

संभवं भवनाशं च स्तुवेऽहमभिनन्दनम् ।
सर्वज्ञं सर्वदर्शं च सप्ततत्त्वोपदेशकम् ॥ २ ॥

वन्दे सुमतिदातारं चिदानन्दं गुणार्णवम् ।
पद्मप्रभं च तद्वर्णं प्रातिहार्यादिभूषितम् ॥ ३ ॥

सुपार्श्वं च सदानन्दं धर्मणोऽशं जगद्गुरुम् ।
धर्मभूषणसंयुक्तं स्तुवेऽहं जिनसप्तमम् ॥ ४ ॥

महासेनसमुद्भूतं चन्द्रचिह्नं जिनं वरम् ।
चन्द्रप्रभं पुष्पदन्तं च श्वेतवर्णं स्तुवे सदा ॥ ५ ॥

शीतलं शीतलं वन्दे व्याधित्रयविनाशकम् ।
पञ्चसंसारदावाग्निशमनैकघनाघनम् ॥ ६ ॥

पावनं श्रेयसं वन्दे श्रेयोनिधिं सदा शुचिम् ।
वासुपूज्यं जगत्पूज्यं वसुपूज्यसमुद्भवम् ॥ ७ ॥

विमलं विमलं वन्दे देवेन्द्रार्चितपङ्कजम् ।
अकलङ्कं पूज्यपादं स्तुवे प्रारब्धसिद्धये ॥ ८ ॥

अनन्तं च जिनं वन्दे संसारार्णवतारकम् ।
धर्मं धर्मस्वरूपं हि भानुराजसमुद्भवम् ॥ ९ ॥

शान्तिनाथ जगद्वन्द्यं जगच्छान्तिविधायकम् ।
चक्राङ्कं मृगचिह्नं च विश्वसेनसमुद्भवम् ॥ १० ॥
कुन्थुनाथमहं वन्दे धर्मचक्रान्वितं सदा ।
कुन्थ्वादिजीवसदयं हृदये करुणान्वितम् ॥ ११ ॥
अरनाथमहं वन्दे रत्नत्रयसमन्वितम् ।
रत्नत्रयप्रदातारं सेवकानां सदाहितम् ॥ १२ ॥
मल्लिं कर्मजये मल्लं स्तुवेऽहं मुनिसुव्रतम् ।
नमीशं श्रीजिनं नौमि भुक्तिमुक्तिप्रदायकम् ॥ १३ ॥
नेमिनाथं नमाम्युच्चैः केवलज्ञानलोचनम् ।
वन्दे श्रीपार्श्वनाथं च प्रसिद्धमहिमास्पदम् ॥ १४ ॥
संस्तुवे सन्मतिं वीरं महावीरं सुखप्रदम् ।
वर्धमानं महत्यादि महावीराभिधानकम् ॥ १५ ॥
एते श्रीमज्जिनाधीशाः केवलज्ञानसंपदः ।
अन्यकालत्रयोत्पन्नाः सन्तु मे सर्वशान्तये ॥ १६ ॥
संस्तुवेऽहं सदा सिद्धान् त्रिलोकशिखरस्थितान् ।
येषां स्मरणमात्रेण सर्वसिद्धिः प्रजायते ॥ १७ ॥
जिनेन्द्रवदनाम्भोजसमुत्पन्नां सरस्वतीम् ।
संस्तुवे त्रिजगन्मान्यां सन्मातेव सुखप्रदाम् ॥ १८ ॥
यस्याः प्रसादतो नित्यं सतां बुद्धिः प्रसर्पति ।
प्रभाते पद्मिनीवोच्चैः तां स्तुवे जिनभारतीम् ॥ १९ ॥
नमामि गुणरत्नानामाकरान् श्रुतसागरान् ।
गौतमादिगणाधीशान् संसाराम्भोधितारकान् ॥ २० ॥
कवित्वनलिनीग्रामप्रबोधनदिवामणिम् ।
कुन्दकुन्दाभिधं नौमि मुनीन्द्रं महिमास्पदम् ॥ २१ ॥
जिनोक्तसप्ततत्त्वार्थसूत्रकर्त्ता कवीश्वरः ।
उमास्वामिमुनिर्नित्यं कुर्यान्मे ज्ञानसंपदाम् ॥ २२ ॥

स्वामी समन्तभद्राख्यो मिथ्यातिमिरभास्करः ।
भव्यपद्मौघशंकर्ता जीयान्मे भावितीर्थकृत् ॥ २३ ॥

विप्रवंशाग्रणीः सूरिः पवित्रः पापकेसरी ।
संजीयाज्जिनपादाब्जसेवनैकमधुव्रतः ॥ २४ ॥

यस्य वाक्किरणैर्नष्टा बौद्धौघाः कौशिका यथा ।
भास्करस्योदये स स्यादकलङ्कः श्रिये कविः ॥ २५ ॥

श्रीजिनेन्द्रमताम्भोधिवर्धनैकविधूत्तमम् ।
जिनसेनं जगद्वन्द्यं संस्तुवे मुनिनायकम् ॥ २६ ॥

मूलसंघाग्रणीर्नित्यं रत्नकीर्तिर्गुरुर्महान् ।
रत्नत्रयपवित्रात्मा पायान्मां चरणाश्रितम् ॥ २७ ॥

कुवादिमदमातङ्गविमदीकरणे हरिः ।
गुणभद्रो गुरुर्जीयात् कवित्वकरणे प्रभुः ॥ २८ ॥

भट्टारको जगत्पूज्यः प्रभाचन्द्रो गुणाकरः ।
वन्द्यते स मया नित्यं भव्यराजीवभास्करः ॥ २९ ॥

जीवाजीवादितत्त्वानां समुद्योतदिवाकरम् ।
वन्दे देवेन्द्रकीर्तिं च सूरिवर्यं दयानिधिम् ॥ ३० ॥

मद्गुरुर्यो विशेषेण दीक्षालक्ष्मीप्रसादकृत् ।
तमहं भक्तितो वन्दे विद्यानन्दी सुसेवकः ॥ ३१ ॥

सूरिराशाधरो जीयात् सम्यग्दृष्टिशिरोमणिः ।
श्रीजिनेन्द्रोक्तसद्धर्मपद्माकरदिवामणिः ॥ ३२ ॥

इत्याप्तभारतीसाधुसंस्तुतिं शर्मदायिनीम् ।
मङ्गलाय विधायोच्चैः सच्चरित्रं सतां ब्रुवे ॥ ३३ ॥

तुच्छमेधोऽपि संक्षेपात् सुदर्शनमहामुनेः ।
वृत्तं विधाय पूतोऽस्मि सुधास्पर्शोऽपिशर्मणे ॥ ३४ ॥

मत्वेति मानसे भक्त्या तच्चरित्रं सुखावहम् ।
वक्ष्येऽहं भव्यजीवानां भुक्तिमुक्तिप्रदायकम् ॥ ३५ ॥

श्रुतेन येन संपत्तिर्भवेल्लोकद्वये शुभा ।
शृण्वन्तु साधवो भव्यास्तद्वृत्तं शर्मकारणम् ॥ ३६ ॥

अथ जम्बूमति द्वीपे सर्वद्वीपाब्धिमध्यगे ।
मेरुः सुदर्शनो नाम लक्षयोजनमानभाक् ॥ ३७ ॥

यच्चतुर्षु वनेषूच्चैश्चतुर्दिक्षु समुन्नताः ।
जिनेन्द्रप्रतिमोपेताः प्रासादाः सन्ति शर्मदाः ॥ ३८ ॥

तस्य दक्षिणतो भाति भरतक्षेत्रमुत्तमम् ।
जिनानां पञ्चकल्याणैः पवित्रं शर्मदायकैः ॥ ३९ ॥

तत्रास्ति मगधो नाम देशो भुवनविश्रुतः ।
यत्र स्वपूर्वपुण्येन संवसन्ति जनाः सुखम् ॥ ४० ॥

योऽनेकनगरग्रामपुरपत्तनकादिभिः ।
नानाकारैर्विभात्युच्चैः सुराजेव सुखप्रदः ॥ ४१ ॥

धनैर्धान्यैः जनैर्मान्यैः संपदाभिश्च संभृतः ।
राजते देशराजोऽसौ निधिर्वा चक्रवर्तिनः ॥ ४२ ॥

यत्र नित्यं विराजन्ते पद्माकरजलाशयाः ।
स्वच्छतोयाः सुविस्तीर्णा महतां मानसोपमाः ॥ ४३ ॥

इक्षुभेदै रसैरन्यैः सरसैः सत्फलादिभिः ।
यो नित्यं दर्शयत्युच्चैः सौरस्यं निजसंभवम् ॥ ४४ ॥

यत्र मार्गे वनादौ च सफलास्तुङ्गपादपाः ।
सुछायाः सज्जना वोच्चैर्भान्ति सर्वप्रतर्पिणः ॥ ४५ ॥

यत्र देशे पुरे ग्रामे पत्तनेसुगिरौ वने ।
जिनेन्द्रभवनान्युच्चैः शोभन्ते सद्ध्वजादिभिः ॥ ४६ ॥

भव्या यत्र जिनेन्द्राणां नित्यं यात्राभिरादरम् ।
प्रतिष्ठाभिर्गरिष्ठाभिः संचयन्ति महाशुभम् ॥ ४७ ॥

पात्रदानैर्महामानैः सज्जनैः परिवारिताः ।
धर्मं कुर्वन्ति जैनेन्द्रं श्रावका दृग्व्रतान्विताः ॥ ४८ ॥

यत्र नार्योऽपि रूपाढ्याः सम्यक्त्वव्रतमण्डिताः ।
पण्डिता धर्मकार्येषु पुत्रसंपद्भिराजिताः ॥ ४९ ॥

सद्वस्त्राभरणैः पुण्यैर्दानपूजादिभिर्गुणैः ।
नित्यं परोपकाराद्यैर्जयन्ति स्म सुराङ्गनाः ॥ ५० ॥

पुण्येन यत्र भव्यानां नेतयोऽपि कदाचन ।
भास्करस्योदये सत्यं न तिष्ठति तमश्चयः ॥ ५१ ॥

वनादौ मुनयो यत्र रत्नत्रयविराजिताः ।
तत्त्वज्ञानैस्तपोध्यानैर्यान्ति स्वर्गापवर्गकम् ॥ ५२ ॥

इत्यादि संपदासारे तस्मिन् देशे मनोहरे ।
पुरं राजगृहं नाम पुरन्दरपुरोपमम् ॥ ५३ ॥
नानाहर्म्यावलीयुक्तं शालत्रयविराजितम् ।
रत्नादितोरणोपेतं गोपुरद्वारसंयुतम् ॥ ५४ ॥

स्वच्छतोयभृता खाता समन्ताद्यस्य शोभते ।
पवित्रा स्वर्गगङ्गेव पद्मराजिविराजिता ॥ ५५ ॥

यत्पुरं जिनदेवादिप्रासादध्वजपङ्क्तिभिः ।
आह्वयत्यत्र वा स्वस्य शोभातुष्टान्नरामरान् ॥ ५६ ॥

नानारत्नसुवर्णाद्यैर्मणिमाणिक्यवस्तुभिः ।
संभृतं संनिधानं वा सज्जनानन्ददायकम् ॥ ५७ ॥

तत्राभूच्छ्रेणिको राजा क्षत्रियाणां शिरोमणिः ।
राजविद्याभिसंयुक्तः प्रजानां पालने हितः ॥ ५८ ॥

श्रीमज्जिनेन्द्रपादाब्जसेवनैकमधुव्रतः ।
सम्यक्त्वरत्नपूतात्मा भावितीर्थकराग्रणीः ॥ ५९ ॥

अनेकभूपसंसेव्यो महामण्डलकेश्वरः ।
दाता भोक्ता विचारज्ञः स राजा वादिचक्रभृत् ॥ ६० ॥
सप्ताङ्गराज्यसंपन्नः शक्तित्रयविराजितः ।
षड्वर्गारिविजेताऽभून्मन्त्रपञ्चाङ्गचक्षुधीः ॥ ६१ ॥

तस्य राज्ये द्विजिह्वत्वं सर्पे नैव प्रजाजने ।
कृशत्वं स्त्रीकटीदेशे निर्धनत्वं तपोधने ॥ ६२ ॥

प्रजा सर्वापि तद्राज्ये जाता सद्धर्मतत्परा ।
सत्यं हि लौकिकं वाक्यं यथा राजा तथा प्रजा ॥ ६३ ॥

कराभिघातस्तिग्मांशौ पाति तस्मिन् महीं नृपे ।
आसीन्नान्यत्र सर्वोऽतो लोकः शोकविवर्जितः ॥ ६४ ॥

तस्यासीच्चेलना नाम्ना राज्ञी राजीवलोचना ।
पतिव्रतापताकेव जिनधर्मपरायणा ॥ ६५ ॥

तस्या रूपेण सादृश्यी नोर्वशी न तिलोत्तमा ।
अद्वितीयाकृतिस्तस्मात्सा बभौ गृहदीपिका ॥ ६६ ॥

तथा तयोर्जिनेन्द्रोक्तधर्मकर्मप्रसक्तयोः ।
वारिषेणादयः पुत्रा बभूवुर्धर्मवत्सलाः ॥ ६७ ॥

प्रायेण सुकुलोत्पत्तिः पवित्रा स्यान्महीतले ।
शुद्धरत्नाकरोद्भूतो मणिर्वा विलसद्द्युतिः ॥ ६८ ॥

एवं तस्मिन् महीनाथे प्राज्यं राज्यं प्रकुर्वति ।
कदाचित्पुण्ययोगेन विपुलाचलमस्तके ॥ ६९ ॥

चतुस्त्रिंशन्महाश्चर्यैः प्रातिहार्यैर्विभूषितः ।
वीरनाथः समायातो विहरन् परमोदयः ॥ ७० ॥

तस्य श्रीवर्द्धमानस्य प्रभावेन तदाक्षणे ।
सर्वेऽवकेशिनो वृक्षा बभूवुः फलसंभृताः ॥ ७१ ॥

आम्रजम्बीरनारङ्गनालिकेरादिपादपाः ।
सच्छायाः सफला जाताः संतुष्टा वा जिनागमे ॥ ७२ ॥

निर्जलाः सजला जाताः सर्वे पद्माकरादयः ।
प्रशान्ताः कानने शीघ्रं ज्वलन्तो वनवह्नयः ॥ ७३ ॥

क्रूराः सिंहादयश्चापि मुक्तवैरा विरेजिरे ।
प्रशान्ताः सज्जना वात्र दयारसविराजिताः ॥ ७४ ॥

सारङ्ग्यः सिंहशावांश्च गावो व्याघ्रीशिशून् मुदा।
मयूर्यः सर्पजान् प्रीत्या स्पृशन्ति स्म सुतान् यथा ॥ ७५ ॥

अन्ये विरोधिनश्चापि महिषास्तुरगादयः।
पशवोऽपि श्रावका जाता भिल्लादिषु च का कथा ॥ ७६ ॥

सत्यं जिनागमे जाते सर्वप्राणिहितंकरे।
किं वा भवति नाश्चर्यं परमानन्ददायकम् ॥ ७७ ॥

इत्येवं जिनराजस्य प्रभावं स विलोक्य च।
संतुष्टो वनपालस्तु समादाय फलादिकम् ॥ ७८ ॥

शीघ्रं तत्पुरमागत्य नत्वा तं श्रेणिकप्रभुम्।
धृत्वा तत्प्राभृतं चाग्रे संजगौ शर्मदं वचः ॥ ७९ ॥

भो राजन् भवतां पुण्यैः केवलज्ञानभास्करः।
समायातो महावीरस्वामी श्रीविपुलाचले ॥ ८० ॥

तत्समाकर्ण्य भूपालः परमानन्दनिर्भरः।
तस्मै दत्वा महादानं समुत्थाय च तां दिशम् ॥ ८१ ॥

गत्वा सप्तपदान्याशु परोक्षे कृतवन्दनः।
जय त्वं वीर गम्भीर वर्धमान जिनेश्वर ॥ ८२ ॥

आनन्ददायिनीं भेरीं दापयित्वा प्रमोदतः।
हस्त्यश्वरथसंदोहपदातिजनसंयुतः ॥ ८३ ॥

स्वयोग्ययानमारूढश्छत्रादिकविभूतिभिः।
वन्दितुं श्रीमहावीरं चचाल श्रेणिको मुदा ॥ ८४ ॥

तां भेरीं ते समाकर्ण्य सर्वे भव्यजनास्तथा।
पूजाद्रव्यं समादाय सस्त्रीका निर्ययुर्द्रुतम् ॥ ८५ ॥

युक्तं ये धर्मिणो भव्या जिनभक्तिपरायणाः।
धर्मकार्येषु ते नित्यं भवन्ति परमादराः ॥ ८६ ॥

एवं स श्रेणिको राजा भव्यलोकैः पुरस्कृतः[१] ।
भेरीमृदङ्गगम्भीरनादगर्जितदिक्तटः ॥ ८७ ॥

देवेन्द्रो वा सुरैः सार्द्धं विपुलाचलमुन्नतम् ।
समारुह्य ददर्शोच्चैः समवादिसृतिं विभोः ॥ ८८ ॥

तां विलोक्य प्रभुश्चित्ते संतुष्टः श्रेणिकस्तराम् ।
यथा वृषभनाथस्य कैलासे भरतेश्वरः ॥ ८९ ॥

चतुर्दिक्षु महामानस्तम्भैस्तुङ्गैः समन्विताम् ।
येषां दर्शनमात्रेण मानं मुञ्चन्ति दुर्दृशः ॥ ९० ॥

तेषां सरांसि सर्वासु दिक्षु षोडश संख्यया ।
स्वच्छतोयैः प्रपूर्णानि सतां चित्तानि वा ततः ॥ ९१ ॥

खातिकां जलसम्पूर्णां रत्नकूलविराजिताम् ।
तापच्छिदं सतां वृत्तिमिवालोक्य जहर्ष सः ॥ ९२ ॥

जातीचम्पकपुन्नागपारिजातादिसंभवैः ।
नानापुष्पैः समायुक्तां पुष्पवाटीं मनोहराम् ॥ ९३ ॥

स्वर्णप्राकारमुत्तुङ्गं चतुर्गोपुरसंयुतम् ।
मानुषोत्तरभूध्रं वा वीक्ष्य प्रीतिमगात्प्रभुः ॥ ९४ ॥

नाटयशालाद्वयं रम्यं प्रेक्षणीयं सुरादिभिः ।
देवदेवाङ्गनागीतनृत्यवादित्रशोभितम् ॥ ९५ ॥

अशोकसप्तपर्णाख्यचम्पकाम्राभिधानभाक् ।
नानाशाखिशताकीर्णं सफलं वनचतुष्टयम् ॥ ९६ ॥

वेदिकां स्वर्णनिर्माणां चतुर्गोपुरसंयुताम् ।
समवादिसृतेर्लक्ष्म्या मेखलां वा ददर्श सः ॥ ९७ ॥

---

१. प्रतौ 'परिस्कृत.' इति पाठ ।

स्वर्णस्तम्भाग्रसंलग्नध्वजव्रातैर्मरुद्धुतैः ।
तां सभामाह्वयन्तीं वा नाकिनो वीक्ष्य तुष्टवान् ॥ ९८ ॥

रूप्यशालं विशालं च गोपुरै रत्नतोरणैः ।
यशोराशिमिवालोक्य जिनेन्द्रस्य मुदं ययौ ॥ ९९ ॥

ततः कल्पद्रुमाणां च वनं सारसुखप्रदम् ।
समन्ताद्वीक्ष्य संतुष्टो भूपालो न ममौ हृदि ॥ १०० ॥

स्वर्णरत्नविनिर्माणां नानाहर्म्यावलीं शुभाम् ।
विश्रामाय सुरादीनां दृष्ट्वा हृष्टो नृपस्तराम् ॥ १०१ ॥

चतुर्दिक्षु महास्तूपान् पद्मरागविनिर्मितान् ।
जिनेन्द्रप्रतिमोपेतान् षड्त्रिंशत्सुमनोहरान् ॥ १०२ ॥

रत्नतोरणसंयुक्तान् सुरासुरसमर्चितान् ।
प्रभुस्तान् पूजयामास वस्तुभिः सज्जनैर्युतः ॥ १०३ ॥

ततो मार्गं समुल्लङ्घ्य स्फाटिकं शालमुन्नतम् ।
चतुर्गोपुरसंयुक्तं निधानैर्मङ्गलैर्युतम् ॥ १०४ ॥

तन्मध्ये षोडशोत्तुङ्गभित्तिभिः परिशोभितम् ।
सभास्थानं जिनेन्द्रस्य द्वादशोरुप्रकोष्ठकम् ॥ १०५ ॥

एवं श्रीमन्महावीरसमवादिसृतिं प्रभुः ।
त्रिः परीत्य महाप्रीत्या संतुष्टः श्रेणिकस्तराम् ॥ १०६ ॥

तत्र त्रिमेखलापीठे सिंहासनमनुत्तरम् ।
मेरुश्रृङ्गमिवोत्तुङ्गं स्वर्णरत्नैर्विनिर्मितम् ॥ १०७ ॥

चतुर्भिरङ्गुलैर्मुक्ता स्थितं वीरजिनेश्वरम् ।
निधानमिव संवीक्ष्य पिप्रिये भूपतिस्तराम् ॥ १०८ ॥

चतुःषष्टिमहादिव्यचामरैरामरैर्युतम् ।
विशुद्धनिर्झरोपेतं स्वर्णाचलमिवाचलम् ॥ १०९ ॥

सर्वशोकापहं देवं महाशोकतरुश्रितम् ।
सारमेघान्वितं चारु काञ्चनाभं महीधरम् ॥ ११० ॥

नानासुगन्धपुष्पौघसुगन्धीकृतदिक्चयम् ।
इन्द्रादिकरनिर्मुक्तपुष्पवृष्टिविराजितम् ॥ १११ ॥
कोटिभास्करसंस्पर्द्धिदेहभामण्डलान्वितम् ।
तत्र भव्याः प्रपश्यन्ति स्वकीयं जन्मसप्तकम् ॥ ११२ ॥
दुन्दुभीनां च कोटीभिर्घोषयन्तीभिरायुतम् ।
मोहारातिजयं वोच्चैरालुलोक जिनं प्रभुः ॥ ११३ ॥
मुक्तामालायुतेनोच्चैश्चारुछत्रत्रयेण वा ।
त्रिधाभूतेन सेवार्थं समायातेन्दुनाश्रितम् ॥ ११४ ॥
सुरासुरनरादीनां चित्तसंतोषकारिणा ।
दिव्येन ध्वनिना तत्त्वं द्योतयन्तं जगद्धितम् ॥ ११५ ॥
अनन्तज्ञानदृग्वीर्यसुखोपेतं गुणाकरम् ।
इन्द्रनागेन्द्रचन्द्रार्कनरेन्द्राद्यैः समर्चितम् ॥ ११६ ॥
इत्यादि केवलज्ञानसमुत्पन्नविभूतिभिः ।
विराजितं समालोक्य सानन्दो मगधेश्वरः ॥ ११७ ॥
जय त्वं त्रिजगत्पूज्य महावीर जगद्धित ।
इत्यादि जयनिर्घोषैर्नमस्कृत्य पुनः पुनः ॥ ११८ ॥
विशिष्टाष्टमहाद्रव्यैर्जलगन्धाक्षतादिभिः ।
पूजयित्वा महाप्रीत्या जिनपादाम्बुजद्वयम् ॥ ११९ ॥
चकार संस्तुतिं भक्त्या भव्यानामीदृशी गतिः ।
यत्सुपूज्येषु सत्पूजा क्रियते शर्मकारिणी ॥ १२० ॥
जय त्वं त्रिजगन्नाथ जय त्वं त्रिजगद्गुरो ।
जय त्वं परमानन्ददानदक्ष क्षमानिधे ॥ १२१ ॥
वीतराग नमस्तुभ्यं नमस्ते सन्मते सदा ।
नमस्ते भो महावीर वीरनाथ जगत्प्रभो ॥ १२२ ॥
वर्धमान जिनेशान नमस्तुभ्यं गुणार्णव ।
महत्यादिमहावीर नमस्ते विश्वभाषक ॥ १२३ ॥

रत्नत्रयसरोजश्रीसमुल्लासदिवाकर।
स्याद्वादवादिने तुभ्यं नमस्ते घातिघातिने ॥ १२४ ॥

नमस्ते त्रिजगद्भव्यतायिने मोक्षदायिने।
नमस्ते धर्मनाथाय कामक्रोधाग्निवार्मुचे ॥ १२५ ॥

नमस्ते स्वर्गमोक्षोरुसौख्यकल्पद्रुमाय च।
सिद्ध बुद्ध नमस्तुभ्यं संसाराम्बुधिसेतवे ॥ १२६ ॥

अनन्तास्ते गुणाः स्वामिन् विशुद्धाः पारवर्जिताः।
अल्पधीर्मादृशो देव कः क्षमः स्तवने तव ॥ १२७ ॥

तथापि श्रीमतां सारपादपद्मद्वये सदा।
भुक्तिमुक्तिप्रदा भक्तिर्भूयान्मे शर्मदायिनी ॥ १२८ ॥

इत्याप्तं श्रीजिनाधीशं केवलज्ञानभास्करम्।
स्तुत्वा नत्वा नमौघैः स नरकोष्ठे सुधीः स्थितः ॥ १२९ ॥

गौतमादिगणाधीशान् संज्ञानमयविग्रहान्।
नमस्कृत्य स चिन्मूर्तिः प्रेमानन्दनिर्भरः ॥ १३० ॥

स जयतु जिनवीरो ध्वस्तमिथ्यान्धकारो
विशदगुणसमुद्रः स्वर्गमोक्षैकमार्गः।
सुरपतिशतसेव्यो भव्यपद्मौघभानुः
सकलदुरितहर्ता मुक्तिसाम्राज्यकर्त्ता ॥ १३१ ॥

इति श्रीसुदर्शनचरिते पञ्चनमस्कारमाहात्म्यप्रदर्शके मुमुक्षु-श्रीविद्यानन्दिविरचिते श्रीमहावीरतीर्थंकरपरमदेव-समागमनव्यावर्णनो नाम प्रथमोऽधिकारः।

द्वितीयोऽधिकारः

जयन्तु भुवनाम्भोजभानवः श्रीजिनेश्वराः ।
केवलज्ञानसाम्राज्याः प्रबोधितजनोत्कराः ॥ १ ॥

अथ श्रीश्रेणिको राजा विनयानतमस्तकः ।
नत्वा श्रीगौतमं देवं धर्मं पप्रच्छ सादरम् ॥ २ ॥

तदासौ सत्कृपासिन्धुर्गौतमो गणनायकः ।
संजगौ स स्वभावो हि तेषां यत्प्राणिनां कृपा ॥ ३ ॥

शृणु त्वं श्रेणिक व्यक्तं भावितीर्थकराग्रणीः ।
धर्मो वस्तुस्वभावो हि चेतनेतरलक्षणः ॥ ४ ॥

क्षमादिदशधा धर्मो तथा रत्नत्रयात्मकः ।
जीवानां रक्षणं धर्मश्चेति प्राहुर्जिनेश्वराः ॥ ५ ॥

जिनोक्तसप्ततत्त्वानां श्रद्धानं यच्च निश्चयात् ।
तत्त्वं सद्दर्शनं विद्धि भवभ्रमणनाशनम् ॥ ६ ॥

ज्ञानं तदेव जानीहि यत् सर्वज्ञेन भाषितम् ।
द्वादशाङ्गं जगत्पूज्यं विरोधपरिवर्जितम् ॥ ७ ॥

चारित्रं च द्विधा प्रोक्त मुनिश्रावकभेदभाक् ।
महाणुव्रतभेदेन निर्मदं सुगतिप्रदम् ॥ ८ ॥

हिंसादिपञ्चकत्यागः सर्वथा यत्त्रिधा भवेत् ।
तच्चारित्रं महत् प्रोक्तं मुनीनां मूलभेदतः ॥ ९ ॥

तथा मूलोत्तरास्तस्य सद्गुणाः सन्ति भूरिशः ।
यैस्तु ते मुनयो यान्ति सुखं स्वर्गापवर्गजम् ॥ १० ॥

श्रावकाणां तु चारित्रं शृणु त्वं श्रेणिक प्रभो ।
सम्यक्त्वपूर्वकं तत्र चादौ मूलगुणाष्टकम् ॥ ११ ॥

पालनीयं बुधैर्नित्यं तद्विशुद्धौ सुखश्रिये ।
रामठं चर्मसंमिश्रं वर्जनीयं जलादिकम् ॥ १२ ॥

सप्तश्वभ्रप्रदायीनि व्यसनानि विशेषतः ।
संत्याज्यानि यकैश्चात्र महान्तोऽपि क्षयं गताः ॥ १३ ॥

त्रसानां रक्षणं पुण्यं सुधीः संकल्पतः सदा ।
मृषावाक्यं बुधैर्हेयं निर्दयत्वस्य कारणम् ॥ १४ ॥

अदत्तादानसंत्यागो भव्यानां संपदाप्रदः ।
संतोषः स्वस्त्रियां नित्यं कर्त्तव्यः सुगतिश्रिये ॥ १५ ॥

संख्या परिग्रहेषूच्चैः सर्वेषु गृहमेधिनाम् ।
संतोषकारिणी कार्या पद्मिन्या वा रविप्रभा ॥ १६ ॥

निशाभोजनकं त्याज्यं नित्यं भव्यैः सुखार्थिभिः ।
यद्व्रतं श्रावकाणां हि मुख्यं धर्म्यं च नेत्रवत् ॥ १७ ॥

जलानां गालने यत्नो विधेयो बुधसत्तमैः ।
नित्यं प्रमादमुत्सृज्य सद्वस्त्रेण शुभश्रिये ॥ १८ ॥

दिग्देशानर्थदण्डाख्यं त्रिभेदं हि गुणव्रतम् ।
पालनीयं प्रयत्नेन भव्यानां सुगतिप्रदम् ॥ १९ ॥

कन्दमूलं च संधानं पत्रशाकादिकं तथा ।
यत्त्याज्यं श्रीजिनैः प्रोक्तं तत्त्याज्यं सर्वथा बुधैः ॥ २० ॥

शिक्षाव्रतानि चत्वारि श्रावकाणां हितानि वै ।
सामायिकव्रतं पूर्वं चैत्यपञ्चगुरुस्तुतिः ॥ २१ ॥

त्रिसन्ध्यं समताभावैर्महाधर्मानुरागिभिः ।
कर्त्तव्या सा महाभव्यैः शर्मणा जिनसूत्रतः ॥ २२ ॥

अष्टम्यां च चतुर्दश्यां प्रोषधः प्रविधीयते ।
कर्मणां निर्जराहेतुर्महाभ्युदयदायकः ॥ २३ ॥

भोगोपभोगवस्तूनामाहारादिकवाससाम् ।
संख्या सुश्रावकाणां च प्रोक्ता संतोषकारिणी ॥ २४ ॥

तथा त्रिविधपात्रेभ्यो दानं देयं चतुर्विधम् ।
आहाराभयभैषज्यशास्त्रसंज्ञं सुखार्थिभिः ॥ २५ ॥
महाव्रतानि पञ्चोच्चैस्तिस्रो गुप्तीर्मनोहराः ।
समितीः पञ्च यः पाति स मुनिः पात्रसत्तमः ॥ २६ ॥
सद्दृष्टिर्यो गुरोर्भक्तः श्रावको व्रतमण्डितः ।
स भवेन्मध्यमं पात्रं दानपूजादितत्परः ॥ २७ ॥
केवलं दर्शनं धत्ते जिनधर्मे महारुचिः ।
त्यक्तमिथ्याविषो धीमान् स पात्रं स्यात्तृतीयकम् ॥ २८ ॥
इति त्रिविधपात्रेभ्यो दानं प्रीत्या चतुर्विधम् ।
यैर्दत्तं भुवने भव्यैस्तैः सिक्तो धर्मपादपः ॥ २९ ॥
तथा दयालुभिर्देयं दानं कारुण्यसंज्ञकम् ।
दीनान्धबधिरादीनां याचकानां महोत्सवे ॥ ३० ॥
त्यागो दानं च पूजा च कथ्यते जैनपण्डितैः ।
ततः सुश्रावकैर्जैनं भक्तितो भवनं शुभम् ॥ ३१ ॥
कारयित्वा तथा जैनीः प्रतिमाः पापनाशनाः ।
प्रतिष्ठाप्य यथाशास्त्रं पञ्चकल्याणकोक्तिभिः ॥ ३२ ॥
दध्यादिभिर्विधायोच्चैः स्नपनं शर्मकारणम् ।
विशिष्टाष्टमहाद्रव्यैर्जलाद्यैर्नित्यचर्चनम् ॥ ३३ ॥
कर्त्तव्यं च महाभव्यैः स्वर्गमोक्षसुखश्रिये ।
सिद्धक्षेत्रे तथा यात्रा कर्तव्या दुर्गतिच्छिदे ॥ ३४ ॥
संस्तुतिं च विधायैव जिनेन्द्राणां सुखप्रदाम् ।
जाप्यमष्टोत्तरं प्रोक्तं शतं शर्मशतप्रदम् ॥ ३५ ॥
मन्त्रोऽयं त्रिजगत्पूज्यः सुपञ्चत्रिंशदक्षरः ।
पापसंतापदावाग्निशमनैकघनाघनः ॥ ३६ ॥
सुखे दुःखे गृहेऽरण्ये व्याधौ राजकुले जले ।
सिंहव्याघ्रादिके क्रूरे शत्रौ सर्पेऽग्निदुर्भये ॥ ३७ ॥

ध्यायेन्मन्त्रमिमं धीमान् सर्वशान्तिविधायकम् ।
युक्तं दिवाकरोद्योते प्रयाति सकलं तमः ॥ ३८ ॥

तथा गुरूपदेशेन पञ्चश्रीपरमेष्ठिनाम् ।
षोडशाद्यक्षरैर्ज्ञेयो मन्त्रौघःशर्मसाधकः ॥ ३९ ॥

शुद्धस्फटिकसंकाशां जिनेन्द्रप्रतिमां शुभाम् ।
सम्यग्दृष्टिः सदा ध्यायेत् सर्वपापप्रणाशिनीम् ॥ ४० ॥

उक्तं च—

आप्तस्यासंनिधानेऽपि पुण्यायाकृतिपूजनम् ।
तार्क्ष्यमुद्रा न किं कुर्याद्विषसामर्थ्यसूदनम् ॥ ४१ ॥

यथा जिनस्तथा जैनं ज्ञानं गुरुपदाम्बुजम् ।
सिद्धचक्रादिकं पूतं चर्चनीयं विचक्षणैः ॥ ४२ ॥

पूज्यपूजाक्रमेणैव भव्यः पूज्यतमो भवेत् ।
ततः सुखार्थिभिर्भव्यैः पूज्यपूजा न लङ्घ्यते ॥ ४३ ॥

यथामेरुर्गिरीन्द्राणामम्बुधीनां पयोनिधिः ।
तथा परोपकारेस्तु धर्मिणां महतां महान् ॥ ४४ ॥

साधर्मिकेषु वात्सल्यं दानमानादिभिः सदा ।
कर्त्तव्यं शल्यनिर्मुक्तैः प्रीत्या सद्धर्मवृद्धये ॥ ४५ ॥

तथा सुश्रावकैर्नित्यं जैनधर्मानुरागिभिः ।
शास्त्रस्य श्रवणं कार्यं गुरूणां सारसेवया ॥ ४६ ॥

इत्थं श्रीमज्जिनेन्द्रोक्तसप्तक्षेत्राणि नित्यशः ।
शर्मसस्यकराण्युच्चैस्तर्पणीयानि धीधनैः ॥ ४७ ॥

अन्ते च श्रावकैर्भव्यैर्जैनतत्त्वविदांवरैः ।
मोहं सङ्गं परित्यज्य संन्यासः संविधीयते ॥ ४८ ॥

अनन्यशरणीभूय भाक्तिकैः परमेष्ठिषु ।
विधाय शरणं चित्ते रत्नत्रयमनुत्तरम् ॥ ४९ ॥

कोऽहं शुद्धचैतन्यस्वभावः परमार्थतः ।
इत्यादितत्त्वसंकल्पैः कार्यः संन्याससद्विधिः ॥ ५० ॥

तथा त्वं भो सुधी राजन् शृणु श्रेणिक मद्वचः ।
जिनोक्तसप्ततत्त्वानां लक्षणं ते गदाम्यऽहम् ॥ ५१ ॥

जीवतत्त्वं भवेत्पूर्वमनादिनिधनं सदा ।
सोऽपि जीवो जिनैः प्रोक्तश्चेतनालक्षणो ध्रुवम् ॥ ५२ ॥

उपयोगद्वयोपेतः स्वदेहपरिमाणभाक् ।
कर्ता भोक्ता च विद्वद्भिरमूर्त्तः परिकीर्तितः ॥ ५३ ॥

पुनर्जीवो द्विधा ज्ञेयो मुक्तः सांसारिकस्तथा ।
सर्वकर्मविनिर्मुक्तो मुक्तः सिद्धो निरञ्जनः ॥ ५४ ॥

निश्शरीरो निराबाधो निर्मलोऽनन्तसौख्यभाक् ।
विशिष्टाष्टगुणोपेतस्त्रैलोक्यशिखरस्थितः ॥ ५५ ॥
साकारोऽपि निराकारो निष्ठितार्थोऽखिलैः स्तुतः ।
अस्य स्मरणमात्रेण भव्याः सयान्ति तत्पदम् ॥ ५६ ॥

संसारी च द्विधा जीवो भव्याभव्यप्रभेदतः ।
भव्यो रत्नत्रये योग्यः स्वर्णपाषाणहेमवत् ॥ ५७ ॥

अभव्यश्चान्धपाषाणसमानो मुनिभिर्मतः ।
अनन्तानन्तकालेऽपि संसारं नैव मुञ्चति ॥ ५८ ॥

भव्यराशेः सकाशाच्च केचिद् भव्याः स्वकर्मभिः ।
शुभाशुभैः सुखं दुःखं भुञ्जानाः संसृतौ सदा ॥ ५९ ॥

कालादिलब्धितः प्राप्य जिनेन्द्रैः परिकीर्तितम् ।
द्विधा रत्नत्रयं सम्यक् समाराध्य तु निर्मलम् ॥ ६० ॥

शुक्लध्यानप्रभावेण हत्वा कर्माणि कर्मठाः ।
याता यान्ति च यास्यन्ति शाश्वतं मोक्षमुत्तमम् ॥ ६१ ॥
अजीवं पुद्गलद्रव्यं त्वं विजानीहि भूपते ।
पृथिव्यादिकषड्भेदं यथागमनिरूपितम् ॥ ६२ ॥

उक्तं च—

अइथूलथूल थूलं थूलसुहुमं च सुहुमथूलं च ।
सुहुमं च सुहुमसुहुमं धराइयं होइ छब्भेयं ॥ ६३ ॥

पुढवी जलं च छाया चउरिंदियविसय कम्म परमाणू ।
छव्विहभेयं भणियं पुग्गलदव्वं जिणिंदेहिं ॥ ६४ ॥

अष्टस्पर्शादिभेदेन पुद्गलं विंशतिप्रभं ।
तथा विभावरूपेण स्यादनेकप्रकारकम् ॥ ६५ ॥

पञ्चप्रकारमिथ्यात्वैरव्रतैर्द्वादशात्मभिः ।
कषायैः पञ्चविंशत्या दशपञ्चप्रयोगकैः ॥ ६६ ॥

उक्तं च—

मिच्छत्तं अविरमणं कसाय जोगा य आसवा होंति ।
पण बारस पणवीसा पण्णरसा हुंति तब्भेया ॥ ६७ ॥

कर्मणामास्रवो जन्तौ भवेन्नित्यं प्रमादिनि ।
भग्नद्रोण्यां यथा नित्यं तोयपूरो विनाशकृत् ॥ ६८ ॥

कषायवशतो जीवः कर्मणां योग्यपुद्गलान् ।
आदत्ते नित्यशोऽनन्तान् स बन्धः स्याच्चतुर्विधः ॥ ६९ ॥

आद्यः प्रकृतिबन्धश्च स्थितिबन्धो द्वितीयकः ।
तृतीयश्चानुभागाख्यः प्रदेशाख्यश्चतुर्थकः ॥ ७० ॥

उक्तं च—

पयडि-ट्ठिदि-अणुभाग-प्पदेसभेदा दु चदुविहो बंधो ।
जोगा पयडि-पदेसा ठिदि-अणुभागा कसायदो हुंति ॥ ७१ ॥

व्रतैः समितिगुप्त्याद्यैरनुप्रेक्षाप्रचिन्तनैः ।
परीषहजयैर्वृत्तैरास्रवारिः स संवरः ॥ ७२ ॥

कर्मणामेकदेशेन क्षरणं निर्जरा मता ।
सकामाकामभेदेन द्विधा सा च प्रकीर्तिता ॥ ७३ ॥

यज्जिनेन्द्रतपोयोगैर्मुन्याद्यैः क्रियते बलात् ।
कर्मणां क्षरणं सा चाविपाकाभिमता बुधैः ॥ ७४ ॥

या च दुःखादिभिः काले कर्मणां निर्जरा स्वयम् ।
सा भवेत्सविपाकाख्या संसारे सरतां सदा ॥ ७५ ॥

सर्वेषां कर्मणां नाशहेतुर्यो भव्यदेहिनाम् ।
परिणामः स विज्ञेयो भावमोक्षो जिनैर्मतः ॥ ७६ ॥

यः सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्रैर्जिनभाषितैः ।
शुक्लध्यानप्रभावेन सर्वेषां कर्मणां क्षयः ॥ ७७ ॥

द्रव्यमोक्षः स विज्ञेयोऽनन्तान्तसुखप्रदः ।
शाश्वतः परमोत्कृष्टो विशिष्टाष्टगुणार्णवः ॥ ७८ ॥

मुक्तिक्षेत्रं जिनैः प्रोक्तं त्रैलोक्यशिखराश्रितम् ।
प्राग्भाराख्यशिलामध्ये छत्राकारं मनोहरम् ॥ ७९ ॥

विस्तीर्णं योजनैः पञ्चचत्वारिंशत्प्रलक्षकैः ।
चन्द्रकान्तिपरिस्पर्द्धि विलसद्विमलप्रभम् ॥ ८० ॥

अष्टयोजनबाहुल्यं प्राग्भारापिण्डसंमितम् ।
विशिष्टमुद्रिकामध्यहीरकं वा निवेशितम् ॥ ८१ ॥

मनागूनैकगव्यूतिं मुक्ता तस्योपरि ध्रुवम् ।
तिष्ठन्ति तनुवाते ते सिद्धा वो मङ्गलप्रदाः ॥ ८२ ॥

भवन्तु कर्मणां शान्त्यै जरामरणवर्जिताः ।
पूजिता वन्दिता नित्यं समाराध्याः स्वचेतसि ॥ ८३ ॥

एतेषां सप्ततत्त्वानां श्रद्धानं दर्शनं शुभम् ।
मोक्षसौख्यतरोर्बीजं पालनीयं बुधोत्तमैः ॥ ८४ ॥

शुभो भावो भवेत्पुण्यं स्वर्गादिसुखसाधनम् ।
अशुभः परिणामोऽपि पापं श्वभ्रादिदुःखदम् ॥ ८५ ॥

एवं तत्त्वार्थसद्भावं लोकस्थितिसमन्वितम् ।
गौतमस्वामिना प्रोक्तं श्रुत्वा श्रीश्रेणिकः प्रभुः ॥ ८६ ॥

द्वादशोरुसभाभव्यैः सार्धं संतोषमाप्तवान् ।
यत्र श्रीगणभृद्वक्ता कः संतोषं प्रयाति न ॥ ८७ ॥

इत्थं श्रीगणनायकेन गदितं श्रीगौतमेनोत्तमम्
जीवाजीवसुतत्त्वलक्षणमिदं श्रीमज्जिनेन्द्रोदितम् ।
श्रुत्वा श्रीमगधेश्वरो गुणनिधिः श्रीश्रेणिको भक्तितः
स्तुत्वा तं मुनिनायकं हितकरं भव्यैर्ननामोच्चकैः ॥ ८८ ॥

इति श्रीसुदर्शनचरिते पञ्चनमस्कारमाहात्म्यप्रदर्शके मुमुक्षु-
श्रीविद्यानन्दिविरचिते श्रावकाचारतत्त्वोपदेशव्यावर्णनो
नाम द्वितीयोऽधिकारः ।

तृतीयोऽधिकारः

अथ प्रभुर्गुरुं नत्वा पुनः प्राह कृताञ्जलिः ।
अहो स्वामिन् जगद्बन्धुस्त्वं सदा कारणं विना ॥ १ ॥

मेघो वा कल्पवृक्षो वा दिव्यचिन्तामणिर्यथा
तथा त्वं त्रिजगद्भव्यपरोपकृतितत्परः ॥ २ ॥

अन्तकृत्केवली योऽत्र वीरनाथस्य पञ्चमः ।
सुदर्शनमुनिस्तस्य चरित्रं भुवनोत्तमम् ॥ ३ ॥

तदहं श्रोतुमिच्छामि श्रीमतां सुप्रसादतः ।
विधाय करुणां देव तन्मे त्वं वक्तुमर्हसि ॥ ४ ॥

तन्निशम्य गणाधीशश्चतुर्ज्ञानविराजितः ।
संजगाद शुभां वाणीं परमानन्ददायिनीम् ॥ ५ ॥

शृणु त्वं भो सुधी राजन्नत्रैव भरताह्वये ।
क्षेत्रे तीर्थेशिनां जन्मपवित्रे परमोदये ॥ ६ ॥

अङ्गदेशोऽस्ति विख्यातः संपदासारसंभृतः ।
नित्यं भव्यजनाकीर्णपत्तनाद्यैर्विराजितः ॥ ७ ॥

विशिष्टाष्टादशप्रोक्तधान्यानां राशयः सदा ।
यत्रोन्नता विराजन्ते सतां वा पुण्यराशयः ॥ ८ ॥

यत्र श्रीमज्जिनेन्द्राणां धर्मः शर्मशतप्रदः ।
दशलाक्षणिको नित्यं वर्तते भुवनोत्तमः ॥ ९ ॥

खलाख्या यत्र सस्यानां निष्पत्तिस्थानकेऽभवत् ।
नान्यः कोऽपि खलो लोकः परपीडाविधायकः ॥ १० ॥

व्रतानां पालने यत्र योषितां च कुचद्वये ।
काठिन्यं विद्यते नैव जनानां पुण्यकर्मणि ॥ ११ ॥

कज्जलं लेखने यत्र नारीणां लोचनेषु च ।
वर्तते न पुनर्यत्र कुले गोत्रे च देहिनाम् ॥ १२ ॥
म्लानता दृश्यते यत्र मुक्तपुष्पप्रदामसु ।
प्रजानां न मुखेषूच्चैः पूर्वपुण्यप्रभावतः ॥ १३ ॥
दण्डशब्दोऽपि यत्रास्ति छत्रे नैव प्रजाजने ।
न्यायमार्गप्रवृत्तित्वाद्राज्ञां निर्लोभितस्तथा ॥ १४ ॥
गजादौ दमनं यत्र तपस्येव तपस्विनाम् ।
इन्द्रियेषु च विद्येत दुष्टबुद्धया न कस्यचित् ॥ १५ ॥
चन्द्रे दोषाकरत्वं च वर्तते न प्रजासु च ।
बन्धनं यत्र पुष्पेषु रुन्धनं दुर्मनस्यलम् ॥ १६ ॥
मिथ्यात्वं सुपरित्यज्य ज्ञात्वा हालाहलोपमम् ।
प्रजा यत्र प्रकुर्वन्ति सद्धर्मं जिनभाषितम् ॥ १७ ॥
पात्रदानं जिनेन्द्रार्चां व्रतं शीलं गुणोज्ज्वलम् ।
सोपवासं विधायोच्चैः साधयन्ति प्रजा हितम् ॥ १८ ॥
यत्र पुष्पफलैर्नम्रसद्वनानि घनानि च ।
राजन्ते सर्वतर्पीणि भव्यानां सुकुलानि वा ॥ १९ ॥
स्वच्छा जलाशया यत्र पद्माकरसमन्विताः ।
विस्तीर्णास्तापहन्तारस्ते सतां मानसोपमाः ॥ २० ॥
यत्र क्षेत्राणि शोभन्ते सर्वसस्यभृतानि च ।
दारिद्र्यछेदकान्युच्चैर्भव्यवृन्दानि वा भुवि ॥ २१ ॥
सरांसि यत्र शोभन्ते चेतांसीव सतां सदा ।
सुवृत्तानि विशालानि तृषातापहराणि च ॥ २२ ॥
यत्र भव्या वसन्त्येवं पूर्वपुण्यप्रसादतः ।
धनैर्धान्यैर्जनैः पूर्णा जिनधर्मपरायणाः ॥ २३ ॥
नार्यो यत्र विराजन्ते रूपसंपद्गुणान्विताः ।
कुर्वन्त्यो जैनसद्धर्मं चतुर्विधमनुत्तरम् ॥ २४ ॥

यत्र सर्वत्र राजन्ते पुरग्रामवनादिषु ।
जिनेन्द्रप्रतिमोपेताः प्रासादाः सुमनोहराः ॥ २५ ॥

अनेकभव्यसंदोहजयनिर्घोषसंचयैः ।
गीतवादित्रपूजादिमहोत्सवशतैरपि ॥ २६ ॥

तोरणध्वजमाङ्गल्यैः स्वर्णकुम्भप्रकीर्णकैः ।
शोभन्ते सर्वभव्यानां परमानन्ददायिनः ॥ २७ ॥

वनादौ यत्र सर्वत्र मुनीन्द्रा ज्ञानलोचनाः ।
स्वच्छचित्ताः प्रकुर्वन्ति तपोध्यानोपदेशनम् ॥ २८ ॥

वापीकूपप्रपा यत्र सन्ति पान्थोपकारिकाः ।
सतां प्रवृत्तयो वात्र दानमानासनादिभिः ॥ २९ ॥

दानिनो यत्र वर्तन्ते शक्तिभक्तिशुभोक्तयः ।
सत्यं त एव दातारो ये वदन्ति प्रियं वचः ॥ ३० ॥

तस्याङ्गविषयस्योच्चैर्मध्ये चम्पापुरी शुभा ।
वासुपूज्यजिनेन्द्रस्य जन्मना या पवित्रिता ॥ ३१ ॥

नानाहर्म्यावली यत्र भव्यनामावली यथा ।
सारसंपद्भृता नित्यं शोभते शर्मदायिनी ॥ ३२ ॥

जिनेन्द्रभवनान्युच्चैर्यत्र कुम्भध्वजोत्करैः ।
आह्वयन्तीव पूजार्थं नित्यं सर्वनरामरान् ॥ ३३ ॥

साररत्नसुवर्णादिप्रतिमाभिर्विरेजिरे ।
भव्यानां शर्मकारीणि मेरुशृङ्गानि वावनौ ॥ ३४ ॥

घण्टाटङ्कारवादित्रनिर्घोषैर्भव्यसंस्तवैः ।
पूजोत्सवैर्हरन्त्यत्र यानि भव्यमनांस्यलम् ॥ ३५ ॥

प्राकारखातिकाट्टालतोरणाद्यैर्विभूषिता ।
पुरी या राजराजस्य रेजे वा सुमनोहरा ॥ ३६ ॥

अनेकरत्नमाणिक्यचन्दनागुरुवस्तुभिः ।
पट्टकूलादिभिर्योच्चैर्जयति स्म निधीनपि ॥ ३७ ॥

यत्र भव्या धनैर्धान्यैः पूर्वपुण्येन नित्यशः ।
सम्यक्त्वव्रतसंयुक्ताः सप्तव्यसनदूरगाः ॥ ३८ ॥
जैनीयात्राप्रतिष्ठाभिर्गरिष्ठाभिर्निरन्तरम् ।
पात्रदानजिनार्चाभिः साधयन्ति निजं हितम् ॥ ३९ ॥
यत्र नार्योऽपि रूपाढ्याः संपदाभिर्मनोहराः ।
सम्यक्त्वव्रतसद्वस्त्ररत्नभूषाविराजिताः ॥ ४० ॥
सत्पुत्रफलसंयुक्ता दानपूजादिमण्डिताः ।
कल्पवल्लीर्जयन्त्युच्चैः परोपकृतितत्पराः ॥ ४१ ॥
यत्र देवेन्द्रनागेन्द्रनरेन्द्राद्यैः प्रपूजितः ।
वासुपूज्यो जिनो जातः सा पुरी केन वर्ण्यते ॥ ४२ ॥
तत्र चम्पापुरीमध्ये बभौ राजा प्रजाहितः ।
प्रतापनिर्जिताराातिर्धात्रीवाहननामभाक् ॥ ४३ ॥
समन्ताद्यस्य पादाब्जद्वयं परमहीभुजः ।
सेवन्ते भक्तितो नित्यं पद्मं वा भ्रमरोत्कराः ॥ ४४ ॥
नीतिशास्त्रविचारज्ञो रूपेण जितमन्मथः ।
धर्मवान् स बभौ राजा वित्तेन धनदोपमः ॥ ४५ ॥
राजविद्याभिरायुक्तः सप्तव्यसनवर्जितः ।
दाता भोक्ता प्रजाभीष्टो मदमुक्तो विचक्षणः ॥ ४६ ॥
सप्ताङ्गराज्यसंपन्नः सुधीः पञ्चाङ्गमन्त्रवित् ।
वैरिषड्वर्गनिर्मुक्तः शक्तित्रयविराजितः ॥ ४७ ॥
स्वाम्यमात्यसुहृत्कोषदेशदुर्गबलाश्रितम् ।
सप्ताङ्गराज्यमित्येष प्राप्तवान् जिनभाषितम् ॥ ४८ ॥
सहायं साधनोपायं देशकोषबलाबलम् ।
विपत्तेश्च प्रतीकारं पञ्चाङ्गं मन्त्रमाश्रयन् ॥ ४९ ॥
कामः क्रोधश्च मानश्च लोभो हर्षस्तथा मदः ।
अन्तरङ्गोऽरिषड्वर्गः क्षितीशानां भवन्त्यमी ॥ ५० ॥

प्रभुशक्तिर्भवेदाद्या मन्त्रशक्तिर्द्वितीयका ।
उत्साहशक्तिराख्याता तृतीया भूभुजां शुभा ॥ ५१ ॥
इत्यादिभूरिसंपत्तेर्भूपतेस्तस्य भामिनी ।
नाम्नाभयमती ख्याता रूपलावण्यमण्डिता ॥ ५२ ॥
शची शक्रस्य चन्द्रस्य रोहिणीव रवेर्यथा ।
रण्णादेवी च तस्येष्टा साभवत् प्राणवल्लभा ॥ ५३ ॥
कामभोगरसाधारकूपिका कमलेक्षणा ।
भूपतेश्चित्तसारङ्गवागुरा मधुरस्वरा ॥ ५४ ॥
तया सार्धं यथाभीष्टं भुञ्जन् भोगान् मनःप्रियान् ।
स राजा सुखतस्तस्थौ लक्ष्म्या वा पुरुषोत्तमः ॥ ५५ ॥
श्रेष्ठी वृषभदासाख्यस्तयासीत्सर्वकार्यवित् ।
उत्तमश्रेष्ठिना राज्यं स्थिरीभवति भूपतेः ॥ ५६ ॥
श्रीमज्जिनेन्द्रपादाब्जसेवनैकमधुव्रतः ।
सद्दृष्टिः सद्गुरोर्भक्तः श्रावकाचारतत्परः ॥ ५७ ॥
जिनेन्द्रभवनोद्धारप्रतिमापुस्तकादिषु ।
चतुःप्रकारसंघेषु वत्सलः परमार्थतः ॥ ५८ ॥
एवं श्रीमज्जिनेन्द्रोक्तं शर्मसस्यप्रदायकम् ।
स्वचित्तामृतधाराभिस्तर्पयामास शुद्धधीः ॥ ५९ ॥
यो जिनेन्द्रपदाम्भोजचर्चनं चित्तरञ्जनम् ।
करोति स्म सदा भव्यः स्वर्गमोक्षैककारणम् ॥ ६० ॥
यः सदा नवभिर्पुण्यैर्दातृसप्तगुणान्वितः ।
पात्रदानेन पूतात्मा श्रेयांसो वापरो नृपः ॥ ६१ ॥
स श्रेष्ठी याचकानां च दयालुर्दानमण्डितः ।
संजातः परमानन्ददायको वा सुरद्रुमः ॥ ६२ ॥
तत्प्रिया जिनमत्याख्या रूपसौभाग्यसंयुता ।
सतीव्रतपताकेव कुलमन्दिरदीपिका ॥ ६३ ॥

श्रीजिनेषु मतिस्तस्याः संजातातीव निर्मला ।
ततोऽस्या जिनमत्याख्याभवत्सार्था शुभप्रदा ॥ ६४ ॥

यद्रूपसंपदं वीक्ष्य जगत्प्रीतिविधायिनीम् ।
जाता देवाङ्गना नूनं मेषोन्मेषविवर्जिताः ॥ ६५ ॥

सद्दानकल्पवल्लीव परमानन्ददायिनी ।
पूजया जिनराजस्य शची वा भक्तितत्परा ॥ ६६ ॥

श्रावकाचारपूतात्मा पवित्रीकृतभूतला ।
दयाक्षमागुणैर्नित्यं सा रेजे वा मुनेर्मतिः ॥ ६७ ॥

एवं स्वपुण्यपाकेन श्रेष्ठिनी गुणशालिनी ।
एकदा सुखतः सुप्ता मन्दिरे सुन्दराकृतिः ॥ ६८ ॥

निशायाः पश्चिमे यामे स्वप्ने संपश्यति स्म सा ।
मेरुं सुदर्शनं रम्यं दिव्यं कल्पद्रुमं मुदा ॥ ६९ ॥

स्वर्विमानं सुरैः सेव्यं विस्तीर्णं च सरित्पतिम् ।
प्रज्वल[illegible]तं शुभं वह्निं प्रध्वस्तध्वान्तसंचयम् ॥ ७० ॥

संतुष्टा प्रातरुत्थाय स्मृतपञ्चनमस्कृतिः ।
प्राभातिकक्रियां कृत्वा जिनमातेव सन्मतिः ॥ ७१ ॥

वस्त्राभरणमादाय विकसन्मुखपङ्कजा ।
सुनम्रा श्रेष्ठिनं प्राह स्वस्वप्नान् शर्मसूचकान् ॥ ७२ ॥

श्रेष्ठी वृषभदासस्तु तान्निशम्य प्रहृष्टवान् ।
शुभं श्रुत्वा सुधीः को वा भूतले न प्रमोदवान् ॥ ७३ ॥

जगौ श्रेष्ठी शुभं भद्रे तथापि जिनमन्दिरम् ।
गत्वा गुरुं प्रपृच्छावो ज्ञानिनं तत्त्ववेदिनम् ॥ ७४ ॥

ततस्तौ बन्धुभिर्युक्तौ पूजाद्रव्यसमन्वितौ ।
जिनेन्द्रभवनं गत्वा परमानन्ददायकम् ॥ ७५ ॥

पूजयित्वा जिनानुच्चैर्विशिष्टाष्टविधार्चनैः ।
संस्तुत्वा नमतः स्मोच्चैर्भव्यानामीदृशी मतिः ॥ ७६ ॥

ततः सुगुप्तनामानं मुनीन्द्रं धर्मदेशकम् ।
प्रणम्य परया प्रीत्याप्रृच्छत्स्वप्नफलं वणिक् ॥ ७७ ॥

तदा ज्ञानी मुनिः प्राह परोपकृतितत्परः ।
शृणु श्रेष्ठिन् गिरीन्द्रस्य दर्शनेन सुदर्शनः ॥ ७८ ॥

पुत्रो भावी पवित्रात्मा त्वत्कुलाम्भोजभास्करः ।
चरमाङ्गो महाधीरो विशुद्धः शीलसागरः ॥ ७९ ॥

दर्शनाद्देववृक्षस्य पुत्रो लक्ष्मीविराजितः ।
दाता भोक्ता दयामूर्तिर्भविष्यति न संशयः ॥ ८० ॥

सुरेन्द्रभवनस्यात्र दर्शनेन सुरैर्नतः ।
जगन्मान्यो विचारज्ञः सज्ज्ञेयः परमोदयः ॥ ८१ ॥

जलधेर्वीक्षणादेव गम्भीरः सागरादपि ।
श्रावकाचारपूतात्मा जिनभक्तिपरायणः ॥ ८२ ॥

अग्नेर्दर्शनतो नूनं पुत्रस्ते गुणसागरः ।
घातिकर्मेन्धनं दग्ध्वा केवली संभविष्यति ॥ ८३ ॥

इत्यादिकं समाकर्ण्य श्रेष्ठी भार्यादिसंयुतः ।
स्वप्नानां स फलं तुष्टः प्राप्तपुत्रो यथा हृदि ॥ ८४ ॥

नान्यथा मुनिनाथोक्तमिति ध्यायन् सुधीर्मुदा ।
विश्वासः सद्गुरूणां यः स एव सुखसाधनम् ॥ ८५ ॥

ततः श्रेष्ठी प्रियायुक्तः सज्जनैः परिवारितः ।
नत्वा गुरुं परं प्रीत्या समागत्य स्वमन्दिरम् ॥ ८६ ॥

कुर्वन् विशेषतो धर्मं पवित्रं जिनभाषितम् ।
दानपूजादिकं नित्यं तस्थौ गेहे सुखं मुदा ॥ ८७ ॥

अथ सा श्रेष्ठिनी पुण्यात् तदाप्रभृति नित्यशः ।
दधती गर्भचिह्नानि रेजे रत्नवतीव भूः ॥ ८८ ॥

पाण्डुत्वं सा मुखे दध्रे महाशोभाविधायकम् ।
भाविपुत्रयशो वोच्चैः सज्जनानां मनःप्रियम् ॥ ८९ ॥

स्वोदरे त्रिवलीभङ्गं तदा सा वहति स्म च।
भाविपुत्रजराजन्ममृत्युनाशप्रसूचकम् ॥ ९० ॥
कार्यादौ मन्दतां भेजे सा सती कमलेक्षणा।
तत्तुजः क्रूरकार्येषु मन्दतां वात्र भाषिणीम् ॥ ९१ ॥
सा सदा सुतरां पुण्यवती चापि तदा क्षणे।
पात्रदाने जिनार्चायां विशेषाद्दोहदं दधौ ॥ ९२ ॥
नवमासानतिक्रम्य सुतं सासूत सुन्दरी।
पुण्यपुञ्जमिवोत्कृष्टं शुभे नक्षत्रवासरे ॥ ९३ ॥
चतुर्थ्यां पुष्यमासस्य सिते पक्षे सुखाकरम्।
तेजसा भास्करं किं वा कान्त्या जितसुधाकरम् ॥ ९४ ॥
श्रेष्ठीवृषभदासस्तु सज्जनैः परिमण्डितः।
पुत्रजन्मोत्सवे गाढं परमानन्दनिर्भरः ॥ ९५ ॥
कारयित्वा जिनेन्द्राणां भवने भुवनोत्तमे।
गीतवादित्रमाङ्गल्यैः स्नपनं पूजनं महत् ॥ ९६ ॥
याचकानां ददौ दानं सुधीर्वाञ्छाधिकं मुदा।
सारस्वर्णादिकं भूरि मृष्टवाक्यसमन्वितम् ॥ ९७ ॥
कुलाङ्गना महागीतगानैर्मानैर्मनोहरैः।
गृहे गृहे तदा तत्र वादित्रध्वजतोरणैः ॥ ९८ ॥
चक्रे महोत्सवं रम्यं जगज्जनमनःप्रियम्।
सत्यं सत्पुत्रसंप्राप्तौ किं न कुर्वन्ति साधवः ॥ ९९ ॥
बान्धवाः सज्जनाः सर्वे परे भृत्यादयोऽपि च।
वस्त्रताम्बूलसद्दानैर्मानितास्तेन हर्षतः ॥ १०० ॥
इत्थं श्रेष्ठी प्रमोदेन नित्यं दानादिभिस्तराम्।
कतिचिद्वासरै रम्यैः पुनः श्रीमज्जिनालये ॥ १०१ ॥
विधाय स्नपनं पूजां सज्जनानन्ददायिनीम्।
भाविमुक्तिपतेस्तस्य पुत्रस्य परमादरात् ॥ १०२ ॥

शोभनं दर्शनं सर्वजनानामभवद्यतः ।
ततो नाम चकारोच्चैः सुदर्शन इति स्फुटम् ॥ १०३ ॥

पूर्वपुण्येन जन्तूनां किं न जायेत भूतले ।
कुलं गोत्रं शुभं नाम लक्ष्मीः कीर्तिर्यशः सुखम् ॥ १०४ ॥

तस्माद्भव्या जिनैः प्रोक्तं पुण्यं सर्वत्र शर्मदम् ।
दानपूजाव्रतं शीलं नित्यं कुर्वन्तु सादराः ॥ १०५ ॥

पुण्येन दूरतरवस्तुसमागमोऽस्ति
पुण्यं विना तदपि हस्ततलात्प्रयाति ।
तस्मात्सुनिर्मलधियः कुरुत प्रमोदात्
पुण्यं जिनेन्द्रकथितं शिवशर्मबीजम् ॥ १०६ ॥

पुण्यं श्रीजिनराजचारुचरणाम्भोजद्वये चर्चनं
पुण्यं सारसुपात्रदानमतुलं पुण्यं व्रतारोपणम् ।
पुण्यं निर्मलशीलरत्नधरणं पर्वोपवासादिकं
पुण्य नित्यपरोपकारकरणं भव्या भजन्तु श्रिये ॥ १०७ ॥

इति श्रीसुदर्शनचरिते पञ्चनमस्कारमाहात्म्यप्रकाशके
मुमुक्षुश्रीविद्यानन्दिविरचिते सुदर्शनजन्ममहोत्सव-
व्यावर्णनो नाम तृतीयोऽधिकारः ॥

चतुर्थोऽधिकारः

अथासौ बालको नित्यं पितुर्गेहे मनोहरे ।
वृद्धिं गच्छन् यथासौख्यं लालितो वनिताकरैः ॥ १ ॥

द्वितीयेन्दुरिवारेजे जनयन् प्रीतिमुत्तमाम् ।
सत्यं सुपुण्यसंयुक्तः पुत्रः कस्य न शर्मदः ॥ २ ॥

दिव्याभरणसद्वस्त्रैर्भूषितोऽभात्स बालकः ।
सतामानन्दकृन्नित्यं कोमलो वा सुरद्रुमः ॥ ३ ॥

नित्यं महोत्सवैर्दिव्यैः स बालः पुण्यसंबलः ।
प्रौढार्भको विशेषेण शोभितो भुवनोत्तमः ॥ ४ ॥

पुत्रः सामान्यतश्चापि सज्जनानां सुखायते ।
मुक्तिगामी च यो भव्यस्तस्य किं वर्ण्यते भुवि ॥ ५ ॥

मस्तके कृष्णकेशौघैः स रेजे पुण्यपावनः ।
अलिभिः संश्रितो वात्र विकसच्चम्पकद्रुमः ॥ ६ ॥

विस्तीर्णं निर्मलं तस्य ललाटस्थानमुन्नतम् ।
पूर्वपुण्यनरेन्द्रस्य वासस्थानमिवारुचत् ॥ ७ ॥

नासिका शुकतुण्डाभा गन्धामोदविलासिनी ।
उन्नता संबभौ तस्य सुयशःस्थितिशंसिनी ॥ ८ ॥

... तस्य रेजाते सारपद्मदलोपमे ।
तस्य तद्वर्णनेनालं यो भावी केवलेक्षणः ॥ ९ ॥

संलग्नौ तस्य द्वौ कर्णौ रत्नकुण्डलशोभितौ ।
सरस्वतीयशोदेव्योः क्रीडान्दोलनकोपमौ ॥ १० ॥

चन्द्रो दोषाकरो नित्यं सकलङ्कः परिक्षयी ।
पद्मं जडाश्रितं तस्मात्तदास्यं जयति स्म ते ॥ ११ ॥

तत्कण्ठः संबभौ नित्यं रेखात्रयविराजितः ।
लक्ष्मीविद्यायुषां प्राप्तिसूचको विमलध्वनिः ॥ १२ ॥
कण्ठे मुक्ताफलैर्दिव्यै रेजेऽसौ बालकोत्तमः ।
तारागणैर्यथा युक्तस्तारेशो राजतेतराम् ॥ १३ ॥
भुजांसौ प्रोन्नतौ तस्य शोभितौ शर्मकारिणौ ।
लोकद्वयमहालक्ष्मीसत्क्रीडापर्वताविव ॥ १४ ॥
हृदयं सदयं तस्य विस्तीर्णं परमोदयम् ।
व्यजेष्ट सागरं क्षारं सारगम्भीरतास्पदम् ॥ १५ ॥
तारेण दिव्यहारेण मुक्ताफलचयेन च ।
हृत्पङ्कजं बभौ तस्य तद्गुणग्रामशंसिना[1] ॥ १६ ॥
आजानुलम्बिनौ बाहू रेजाते भूषणान्वितौ ॥
दृढौ वा विटपौ तस्य सदानौ कल्पशाखिनः ॥ १७ ॥
पाणिपद्मद्वये तस्य कटकद्वयमुद्बभौ ।
कनत्कनकनिर्माणमुपयोगद्वयं यथा ॥ १८ ॥
तस्योदरं विभाति स्म सुमानं नाभिसंयुतम् ।
निधानस्थानकं वोच्चैः सर्वदोषविवर्जितम् ॥ १९ ॥
कटीतटं कटीसूत्रवेष्टितं सुदृढं बभौ ।
जम्बूद्वीपस्थलं वात्र स्वर्णवेदिकयान्वितम् ॥ २० ॥
ऊरुद्वयं शुभाकारं सुदृढं तस्य संबभौ ।
सारं कुलगृहस्योच्चैःस्तम्भद्वयमिवोत्तमम् ॥ २१ ॥
जानुद्वयं शुभं रेजे तस्य सारततं तराम् ।
वज्रगोलकयुग्मं वा कर्मारातिविजित्वरम् ॥ २२ ॥
जंघाद्वयं परं तस्य सर्वभारभरक्षमम् ।
भव्यानां सुकुलं किं वा तस्य रेजे सुखप्रदम् ॥ २३ ॥

१. राशिना इति पाठः

द्वौ पादौ तस्य रेजाते स्वङ्गुलीभिः समन्वितौ ।
सपत्रं कमलं जित्वा लक्षणश्रीविराजितौ ॥ २४ ॥

इत्यादिकं जगत्सारं तस्य रूपं मनःप्रियम् ।
किं वर्ण्यते मया योऽत्र भावीत्रैलोक्यपूजितः ॥ २५ ॥

वाणी तस्य मुखे जाता सज्जनानन्ददायिनी ।
तस्याः किं कथ्यते याग्रे सर्वतत्त्वार्थभाषिणी ॥ २६ ॥

ततो महोत्सवैः पित्रा जैनोपाध्यायसंनिधौ ।
पाठनार्थं स पूतात्मा स्थापितो धीमता सुतः ॥ २७ ॥

पुरोहितसुतेनामा स कुर्वन् पठनक्रियाम् ।
कपिलाख्येन मित्रेण विनयै रञ्जिताखिलः ॥ २८ ॥

पूर्वपुण्येन भव्योऽसौ सर्वविद्याविदांवरः ।
संजातः सुतरां रेजे मणिर्वा संस्कृतो बुधैः ॥ २९ ॥

अक्षराणि विचित्राणि गणितं शास्त्रमुत्तमम ।
तर्कव्याकरणान्युच्चैः काव्यच्छन्दांसि निस्तुषम् ॥ ३० ॥

ज्योतिष्कं वैद्यशास्त्राणि जैनागमशतानि च
श्रावकाचारकादीनि पठति स्म यथाक्रमम् ॥ ३१ ॥

विद्या लोकद्वये माता विद्या शर्मयशस्करी ।
विद्या लक्ष्मीकरा नित्यं विद्या चिन्तामणिर्हितः ॥ ३२ ॥
विद्या कल्पद्रुमो रम्यो विद्या कामदुहा च गौः ।
विद्या सारधनं लोके विद्या स्वर्मोक्षसाधिनी ॥ ३३ ॥

तस्माद्भव्यैः सदा कार्यो विद्याभ्यासो जगद्धितः ।
त्यक्त्वा प्रमादकं कष्टं सद्गुरोः पादसेवया ॥ ३४ ॥

एवं विद्यागुणैर्दानैर्मानैर्भव्यानुरञ्जनैः ।
स रेजे यौवनं प्राप्य सुतरां सज्जनप्रियः ॥ ३५ ॥

अथ तत्र परः श्रेष्ठी सुधीः सागरदत्तवाक् ।
पत्नी सागरसेनाख्या तस्यासीत्प्राणवल्लभा ॥ ३६ ॥

श्रेष्ठी सागरदत्ताख्यः स कदाचित्प्रमोदतः ।
जगौ वृषभदासाख्यं प्रीतितो यदि मे सुता ॥ ३७ ॥
भविष्यति तदा तेऽस्मै दास्ये पुत्राय तां सुताम् ।
नाम्ना सुदर्शनायाहं यतः प्रीतिः सदावयोः ॥ ३८ ॥
युक्तं सतां गुणिप्रीतिर्वल्लभा भवति ध्रुवम् ।
विदुषां भारतीवात्र लोकद्वयसुखावहा ॥ ३९ ॥
ततः समीपकाले च तस्य पत्नी स्वमन्दिरे ।
सती सागरसेनाख्या समसूत सुतां शुभाम् ॥ ४० ॥
साभून्मनोरमा नाम्ना नवयौवनमण्डिता ।
रूपसौभाग्यसंपन्ना कामदेवस्य वा रतिः ॥ ४१ ॥
वस्त्राभरणसंयुक्ता सा रेजे सुमनोरमा ।
कोमला कल्पवल्लीव जनानां मोहनौषधिः ॥ ४२ ॥
तस्या द्वौ कोमलौ पादौ सारनूपुरसंयुतौ ।
साङ्गुल्यौ लक्षणोपेतौ जयतः स्म कुशेशयम् ॥ ४३ ॥
तस्या जङ्घे च रेजाते सारलक्षणलक्षिते ।
पादपङ्कजयोर्नित्यं दधत्यौ नालयोः श्रियम् ॥ ४४ ॥
सदर्पचारुकन्दर्पभूपतेर्गृहतोरणे ।
रम्भास्तम्भायितं तस्याश्चोरुभ्यां यौवनोत्सवे ॥ ४५ ॥
नितम्बस्थलमेतस्या जैत्रभूमिर्मनोभुवः ।
यत्सदैवात्र वास्तव्यं पाति लोकत्रयं रतम् ॥ ४६ ॥
मध्यभागो बलिष्ठोऽस्याः कृशोदर्याः कृशोऽपि सन् ।
यो बलित्रितयाक्रान्तोऽप्यधिकां विदधौ श्रियम् ॥ ४७ ॥
तस्याश्च हृदयं रेजे कुचद्वयसमन्वितम् ।
सहारं तोरणद्वारं सकुम्भं वा स्मरप्रभोः ॥ ४८ ॥
एतस्याः सरला काला रोमराजी तरां बभौ ।
कन्दर्पदन्तिनो बिभ्रत्यालानस्तम्भविभ्रमम् ॥ ४९ ॥

तद्बाहू कोमलौ रम्यौ करपल्लवसंयुतौ ।
सद्रत्नकङ्कणोपेतौ जयतो मालतीलताम् ॥ ५० ॥

कण्ठः सुस्वरस्तस्यास्त्रिरेखो हारमण्डितः ।
कम्बुशोभां बभारोच्चैः सज्जनानन्ददायिनीम् ॥ ५१ ॥

मुखाम्बुजं बभौ तस्या नासिकाकर्णिकायुतम् ।
सुगन्धं रदनज्योत्स्नाकेसरं कोमलं शुभम् ॥ ५२ ॥

चक्षुषी कर्णविश्रान्ते रेजाते भ्रूसमन्विते ।
कामिनां चित्तवेध्येषु पुष्पेषोः शरशोभिते ॥ ५३ ॥

कर्णौ लक्षणसंपूर्णौ कुण्डलद्वयसुन्दरौ ।
तस्या रूपश्रियो नित्यमान्दोलश्रियमाश्रितौ ॥ ५४ ॥

कपोलौ निर्मलौ तस्या वर्तुलाकारधारिणौ ।
जगच्चेतोहरौ नित्यं सोमवत्संबभूवतुः ॥ ५५ ॥

ललाटपट्टकं तस्या निर्मलं तिलकान्वितम् ।
चन्द्रबिम्बं कलङ्कत्वाज्जयति स्म सदाशुभम् ॥ ५६ ॥

तस्याः सुकेश्याः कबरीबन्धः केनोपमीयते ।
यस्तूच्चैः कामराजस्य कामिनां पाशवद् बभौ ॥५७॥

इत्यादिरूपसंपत्त्या वस्त्राभरणशोभिता ।
गुणैः सुराङ्गनाः सापि जयति स्म मनोरमा ॥५८॥

अथैकदा पुरीमध्ये विनोदेन सुदर्शनः ।
कन्दर्पकामिनीरूपसर्पदर्पस्य जाङ्गुली ॥५९॥

मित्रेण कपिलेनामा दिव्याभरणवस्त्रभाक् ।
पर्यटन् कल्पवृक्षो वा याचकप्रीणनक्षमः ॥६०॥

सर्वलक्षणसंपूर्णः कलागुणविशारदः ।
सर्वस्त्रीजनसंदोहनेत्रनीलोत्पलश्रियः ॥६१॥

पूर्णेन्दुः पुण्यसंपूर्णः स्वकान्तिज्योत्स्नयान्वितः ।
क्वचिद् गच्छन् स्वसौभाग्यान्मोहयन् सकलान् जनान् ॥६२॥

तस्य सागरदत्तस्य पुत्रिकां कुलदीपिकाम् ।
वस्त्राभरणसंदोहैर्मण्डितां तां मनोरमाम् ॥६३॥

सखीभिः संयुतां पूतां पूजार्थं निजलीलया ।
जिनालयं प्रगच्छन्तीं समालोक्य सुविस्मितः ॥६४॥

स प्राह कपिलं मित्र किमेषा सुरकन्यका ।
किमेषा किन्नरी रम्भा किं वा चैषा तिलोत्तमा ॥६५॥

किं वा विद्याधरी रम्या किं वा नागेन्द्रकन्यका ।
आगता भूतले सत्यं ब्रूहि त्वं मे विचक्षण ॥६६॥

तं निशम्य सुधीः सोऽपि जगाद कपिलो द्विजः ।
शृणु त्वं मित्र ते वच्मि वचः संदेहनाशनम् ॥६७॥

अत्रैव पत्तने रम्ये श्रेष्ठी सागरदत्तवाक् ।
श्रीजिनेन्द्रपदाम्भोजसेवनैकमधुव्रतः ॥६८॥

श्रावकाचारपूतात्मा दानपूजाविराजितः ।
सती सागरसेनाख्या तत्प्रिया सुमनःप्रिया ॥६९॥

सत्यं स एव लोकेऽस्मिन् गृहवासः प्रशस्यते ।
यत्र धर्मे गुणे दाने द्वयोर्मेधा सदा शुभा ॥७०॥

तयोरेषा सुता सारकन्यागुणविभूषिता ।
पुण्येन यौवनोपेता कुलोद्योतनदीपिका ॥७१॥

तदाकर्ण्य कुमारोऽपि मानसे मोहितस्तराम् ।
लक्ष्मीं वात्र हरिर्वीक्ष्य संजातः कामपीडितः ॥७२॥

स्वमन्दिरं समागत्य शय्यायां संपपात च ।
तां चित्ते देवतां वोच्चैः स्मरति स्म स्मराकुलः ॥७३॥

तच्चिन्तया तदा तस्य सर्वकार्यसमन्वितम् ।
अन्नं पानं च ताम्बूलं विस्मृतं धिक् स्मराग्निकम् ॥७४॥

चन्दनागुरुकर्पूरपुष्पशीतोपचारकः ।
तस्य कामाग्निकुण्डे च संप्रजाता घृताहुतिः ॥७५॥

एहि त्वमेहि संजल्पन्तिष्ठ कामिनि सांप्रतम् ।
उत्सङ्गे मृगशावाक्षि मम तापं व्यपोह्य ॥७६॥

इत्यादिकं वृथालापं जल्पन् पित्रादिभिस्तदा ।
पृष्टस्ते पुत्र किं जातं ब्रूहि सर्वं यथार्थतः ॥७७॥

स पृष्टोऽपि यदा नैव ब्रूते पित्रा तदा द्रुतम् ।
संपृष्टः कपिलः प्राह सर्वं वृत्तान्तमादितः ॥७८॥

युक्तं प्रच्छन्नकं कार्यं किंचिद् वा शुभाशुभम् ।
मित्रं सर्वं विजानाति सत्सखा शर्मदायकः ॥७९॥

पुत्रस्यार्तिमथाकर्ण्य तदन्यथापरिहानये ।
गृहं सागरदत्तस्य चचाल वणिजांपतिः ॥८०॥

भवन्त्यपत्यवर्गस्य पितरस्तु सदा हिताः ।
यथा पद्माकरस्यात्र भानुर्नित्यं विकासकृत् ॥८१॥

यावत्तस्य गृहं याति श्रेष्ठी वृषभदासवाक् ।
तावत्तस्य गृहे सापि पुत्री नाम्ना मनोरमा ॥८२॥

सुदर्शनं समालोक्य विद्धा मदनशायकैः ।
गत्वा गृहं गृहीता वा पिशाचेन सुविह्वला ॥८३॥

क्वासि क्वासि मनोऽभीष्ट मदीयप्राणवल्लभ ।
त्वद्विना मे घटी चापि याति कल्पशतोपमा ॥८४॥

मासायते निमेषोऽपि गृहं कारागृहायते ।
देहि मे वचनं नाथ मदीयप्राणधारणम् ॥८५॥

स एव नरशार्दूलो भुवने परमोदयः ।
यो मां दर्शनमात्रेण पीडयत्यत्र मन्मथः ॥८६॥

इत्यादिकं प्रलापं च करोति स्म निरन्तरम् ।
भोजनादिकमुत्सृज्य तदा संसक्तमानसा ॥८७॥

युक्तं दुष्टेन कामेन महान्तोऽपि महीतले ।
रुद्राद्योऽपि संदग्धा मुग्धेष्वन्येषु का कथा ॥८८॥

तावत्तत्र समायातः स श्रेष्ठी तं विलोक्य च ।
सुधीः सागरदत्तोऽपि समुत्थाय कृतादरः ॥८९॥

स्थानासनशुभैर्वाक्यैश्चक्रे संमानमुत्तमम् ।
स स्वभावः सतां नित्यं विनयो यः सज्जनेष्वलम् ॥९०॥

ततः कुशलवार्तां च कृत्वा साधार्मिकोचिताम् ।
जगौ कन्यापिता प्रीतो भो श्रेष्ठिन् सज्जनोत्तम ॥९१॥

पवित्रं मन्दिरं मेऽद्य संजातं सुविशेषतः ।
यद्भवन्तः समायाताः पवित्रगुणसागराः ॥९२॥

कृत्वा कृपां तथा प्रीत्या कार्यं किमपि कथ्यताम् ।
ततो वृषभदासोऽपि प्रोवाच स्वमनीषितम् ॥९३॥

मनोरमा शुभा पुत्री त्वदीया पुण्यपावना ।
त्वया सुदर्शनायाशु दीयतां[1] परमादरात् ॥९४॥

तं निशम्य सुधीः सोऽपि तुष्टः सागरदत्तवाक् ।
जगौ श्रेष्ठिन् सुधीः सारसुवर्णमणिसंभवः ॥९५॥

संयोगः शर्मदो नित्यं कस्य वा न सुखायते ।
अतः कन्या मया तस्मै दीयते त्वत्तुजे मुदा ॥९६॥

शृणु चान्यद्वचो भद्र गदतो मम साम्प्रतम् ।
ययोरेव समं वित्तं ययोरेव समं कुलम् ॥९७॥

तयोर्मैत्री विवाहश्च न तु पुष्टाविपुष्टयोः ।
श्लोकोऽयं सत्यमापन्नः संबन्धादावयोरपि ॥९८॥

गदित्वेति समाहूय श्रीधराख्यं विचक्षणम् ।
ज्योतिष्कशास्त्रसंपन्नं दत्वा मानं वणिग्जगौ ॥९९॥

ब्रूहि भो त्वं शुभं लग्नं विवाहोचितमुत्तमम् ।
व्यवहारः सतां मान्यो यः शुभो भव्यदेहिनाम् ॥१००॥

---

१ 'दीयते' इति पाठः ।

सोऽवोचन्निकटश्चास्ति लग्नो मासे वसन्तके ।
सर्वदोषविनिर्मुक्तः पञ्चम्यां शुक्लपक्षके ॥१०१॥
संपूर्णायां तिथौ धीमान् यः करोति विवाहकम् ।
गृहं पूर्णं भवेत्तस्य पुत्ररत्नसमृद्धिभिः ॥१०२॥
तदा तौ परमानन्दनिर्भरौ वणिजां पती ।
पूर्वं कृत्वा जिनेन्द्राणां मन्दिरे शर्ममन्दिरे ॥१०३॥
पञ्चामृतैर्जगत्पूज्यजिनेन्द्रस्नपनं महत् ।
चक्रतुश्च महापूजां जलाद्यैः शर्मकारिणीम् ॥१०४॥
ततस्तौ खञ्जनैर्युक्तौ विशिष्टैश्चित्तरञ्जनैः ।
विधाय मण्डपं दिव्यं महास्तम्भैः समुन्नतम् ॥१०५॥
सारवस्त्रादिभिर्युक्तं पुष्पमालाविराजितम् ।
सतां चेतोहरं पूतं लक्ष्म्या वासमिवायतम् ॥१०६॥
सद्वेदीपूर्णकुम्भाद्यैः संयुतं विलसद्ध्वजम् ।
कामिनीजनसंगीतध्वनिवादित्रराजितम् ॥१०७॥
महादानप्रवाहेण जनानां वा सुरद्रुमम् ।
रम्भास्तम्भैर्युतं चारुतोरणैः प्रविराजितम् ॥१०८॥
मङ्गलस्नानकं दत्वा कुलस्त्रीभिर्मनोहरम् ।
वस्त्राभरणसंदोहैः स्रक्ताम्बूलादिभिर्युतम् ॥१०९॥
महोत्सवैः समानीय तत्र पूतं वधूवरम् ।
शचीशक्रमिवात्यन्तसुन्दरं पुण्यमन्दिरम् ॥११०॥
वेद्यां संस्थाप्य पुष्पार्द्रतन्दुलाद्यैः सुमानितम् ।
जैनपण्डितसंप्रोक्तमहाहोमजपादिभिः ॥१११॥
शुभे लग्ने दिने रम्ये कुलाचारविधानतः ।
भोजनादिकसद्दानैर्मानैश्चेतोऽभिरञ्जनैः ॥११२॥
तदा सागरदत्ताख्यः श्रेष्ठी भार्यादिभिर्युतः ।
पूर्णं भृङ्गारमादाय सुदर्शनकरे शुभे ॥११३॥

चिरं जीवेति संप्रोक्त्वा पुण्यधारामिवोज्ज्वलाम् ।
एषा तुभ्यं मया दत्ता जलधारां ददौ मुदा ॥११४॥

सोऽपि तत्पाणिपङ्कजपीडनं प्रमदप्रदम् ।
चक्रे सुदर्शनो धीमान् सर्वसज्जनसाक्षिकम् ॥११५॥

एवं तदा तयोस्तत्र सज्जनानन्दकारणम् ।
विवाहमङ्गलं दिव्यं समभूत्पुण्ययोगतः ॥११६॥

इत्थं सारविभूतिमङ्गलशतैर्दानैः सुमानैः शुभैः
नित्यं पूर्णमनोरथैश्च नितरां जातो विवाहोत्सवः ।
सर्वेषां प्रचुरप्रमोदजनकः संतानसंवृद्धिकः
सत्पुण्याच्छुभदेहिनां त्रिभुवने संपद्यते मङ्गलम् ॥११७॥

इति सुदर्शनचरिते पञ्चनमस्कारमाहात्म्यप्रदर्शके मुमुक्षु-
श्रीविद्यानन्दिविरचिते सुदर्शनमनोरमाविवाह-
मङ्गलव्यावर्णनो नाम चतुर्थोऽधिकारः ॥

पञ्चमोऽधिकारः

अथातो दम्पती गाढं पूर्वपुण्यप्रभावतः ।
महास्नेहेन संयुक्तौ शचीदेवेन्द्रसंनिभौ ॥१॥

भुञ्जानौ विविधान् भोगान् स्वपञ्चेन्द्रियगोचरान् ।
सुस्थितौ मन्दिरे नित्यं परमानन्दनिर्भरौ ॥२॥

तदा कालक्रमेणोच्चैः संजाते सुरतोत्सवे ।
मनोरमा स्वपुण्येन शुभं गर्भं बभार च ॥३॥

अभ्रच्छाया यथा मेघं प्रजानां जीवनोपमम् ।
मासान्नव व्यतिक्रम्य सासूत सुतमुत्तमम् ॥४॥

सर्वलक्षणसंपूर्णं सुकान्ताख्यं जनप्रियम् ।
रत्नभूमिर्यथा रत्नसंचयं संपदाकरम् ॥५॥

एवं वृषभदासाख्यः स श्रेष्ठी पुण्यपाकतः ।
तारागणैर्यथा चन्द्रः पुत्रपौत्रादिभिर्युतः ॥६॥

श्रीमज्जिनेन्द्रचन्द्रोक्तधर्मकर्मणि तत्परः ।
श्रावकाचारपूतात्मा दानपूजापरायणः ॥७॥

यावत्संतिष्ठते तावन्मुनीन्द्रो ज्ञानलोचनः ।
समाधिगुप्तनामोच्चैराजगाम वनान्तरम् ॥८॥

संघेन महता सार्द्धं रत्नत्रयविराजितः ।
श्रीजिनेन्द्रमताम्भोधिवर्धनैकविधुः सुधी ॥९॥

तपोरत्नाकरो नित्यं भव्याम्भोरुहभास्करः ।
जीवादिसप्ततत्त्वार्थसमर्थनविशारदः ॥१०॥

धर्मोपदेशपीयूषवृष्टिभिः परमोदयः ।
सदा संतर्पयन् भव्यचातकौघान् दयानिधिः ॥११॥

तदागमनमात्रेण तद्वनं नन्दनोपमम् ।
सर्वर्तुफलपुष्पौघैः संजातं सुमनोहरम् ॥१२॥
जलाशयास्तरां स्वच्छाः संपूर्णा रेजिरे तदा ।
जनतापच्छिदो नित्यं ते सतां मानसोपमाः ॥१३॥
क्रूराः सिंहादयश्चापि बभूवुस्ते दयापराः ।
साधूनां सत्प्रभावेण किं शुभं यन्न जायते ॥१४॥
तत्प्रभावं समालोक्य वनपालः प्रहर्षतः ।
फलादिकं समानीय धृत्वाग्रे भूपतिं जगौ ॥१५॥
भो राजन् भुवनानन्दी समायातो वने मुनिः ।
संघेन महता सार्धं पवित्रीकृतभूतलः ॥१६॥
तन्निशम्य प्रभुस्तस्मै दत्वा दानं प्रवेगतः ।
दापयित्वा शुभां भेरीं भव्यानां शर्मदायिनीम् ॥१७॥
सर्वैर्वृषभदासाद्यैः पौरलोकैः समन्वितः ।
गत्वा वनं मुनिं वीक्ष्य त्रिःपरीत्य प्रमोदतः ॥१८॥
मुनेः पादाम्बुजद्वन्द्वं समभ्यर्च्य सुखप्रदम् ।
कृताञ्जलिर्नमश्चक्रे भव्यानामित्यनुक्रमः ॥१९॥
मुनिः समाधिगुप्ताख्यो दयारससरित्पतिः ।
धर्मवृद्धिं ददौ स्वामी हृष्टास्ते भूमिपादयः ॥२०॥
ततस्तैर्विनयेनोच्चैः संपृष्टो मुनिसत्तमः ।
धर्मं जगाद भो भव्याः श्रूयतां जिनभाषितम् ॥२१॥
धर्मं शर्माकरं नित्यं कुरुध्वं परमोदयम् ।
प्राप्यन्ते संपदो येन पुत्रमित्रादिभिर्युताः ॥२२॥
सुराज्यं मान्यता नित्यं शौर्यौदार्यादयो गुणाः ।
विद्या यशः प्रमोदश्च धनधान्यादिकं तथा ॥२३॥
स्वर्गो मोक्षः क्रमेणापि प्राप्यते भव्यदेहिभिः ।
स धर्मो द्विविधो ज्ञेयो मुनिश्रावकभेदभाक् ॥२४॥

मुनीनां स महाधर्मो भवेत्स्वर्गापवर्गदः ।
सर्वथा पञ्चपापानां त्यागो रत्नत्रयात्मकः ॥२५॥

श्रावकाणां लघुः स्यातस्तत्रादौ दोषवर्जितः ।
देवोऽर्हन् केवलज्ञानी गुरुर्निर्ग्रन्थतामितः ॥२६॥

दशलाक्षणिको धर्मः श्रद्धा चेति सुखप्रदा ।
पालनीया सदा भव्यैर्दुर्गतिच्छेदकारिणी ॥२७॥

जिनोक्तसप्ततत्त्वानां श्रद्धानं यच्च निर्मलम् ।
सम्यग्दर्शनमाम्नातं भवभ्रमणनाशनम् ॥२८॥
तथौपशमिकं मिश्रं क्षायिकं च तदुच्यते ।
सप्तानां प्रकृतीनां हि शममिश्रक्षयोक्तिभिः ॥२९॥
तेन युक्तो भवेद्धर्मो भव्यानां स्वर्गमोक्षदः ।
यथाधिष्ठानसंयुक्तः प्रासादः प्रविराजते ॥३०॥

मद्यमांसमधुत्यागः सहोदुम्बरपञ्चकैः ।
अष्टौ मूलगुणानाहुर्गृहिणां श्रवणोत्तमाः ॥३१॥

तथा सत्पुरुषैर्नित्यं द्यूतादिव्यसनानि च ।
संत्याज्यानि यकैः कष्टं महान्तोऽपि समाश्रिताः ॥३२॥

सप्तव्यसनमध्ये च प्रधानं द्यूतमुच्यते ।
कुलगोत्रयशोलक्ष्मीनाशकं तत्त्यजेद् बुधः ॥३३॥

कितवेषु सदा रागद्वेषासत्यप्रवञ्चनाः ।
दोषाः सर्वेऽपि तिष्ठन्ति यथा सर्पेषु दुर्विषम् ॥३४॥
अत्रोदाहरणं राजा श्रावस्त्यां सुमहानपि ।
सुकेतुस्तेन राज्यं च हारितं द्यूतदोषतः ॥३५॥

युधिष्ठिरोऽपि भूपालो द्यूतेनात्र प्रवञ्चितः ।
कष्टां दशां तरां प्राप्तस्तस्माद्भव्यास्त्यजन्तु तत् ॥३६॥

श्रूयते च पुरा कुम्भनामा भूपः पलाशनात् ।
काम्पिल्याधिपतिर्नष्टः सूपकारेण संयुतः ॥३७॥

तथा पापी बको राजा पलासक्तः प्रणष्टधीः ।
लोकानां बालकानां च भक्षको निन्दितो जनैः ॥३८॥

भक्षित्वा विप्रपुत्रं च त्यक्तः पौरैर्विचक्षणैः ।
स मृत्वा दुर्गतिं प्राप पापिनामीदृशी गतिः ॥३९॥

मद्यपस्य भवेन्नित्यं नष्टबुद्धिः स्वपापतः ।
तत्पानमात्रतः शीघ्रं दृष्टान्तश्च निगद्यते ॥४०॥

एकपाद्ग्रामभागेको विप्रपुत्रोऽपि चैकदा ।
परिव्राजकवेषेण गङ्गास्नानार्थनिर्गतः ॥४१॥

अटव्यां मत्तमातङ्गैर्मद्यमांसप्रभक्षकैः ।
चाण्डालीसंगतैर्धृत्वा स प्रोक्तो रे द्विजात्मज ॥४२॥

मद्यमांसप्रियाणां च मध्ये यद्रोचतेतराम् ।
तदेकं स्वेच्छया भुक्त्वा याहि त्वं स्नानहेतवे ॥४३॥

अन्यथा जाह्नवी माता दुर्लभा मरणावधि ।
तन्निशम्य द्विजः सोऽपि चिन्तयामास चेतसि ॥४४॥

पापलेपकरं मांसं श्वभ्रदुःखनिबन्धनम् ।
कथं वा भक्ष्यते विप्रैः कुलगोत्रक्षयंकरम् ॥४५॥

उक्तं च—

तिलसर्षपमात्रं च मांसं खादन्ति ये द्विजाः ।
तिष्ठन्ति नरके तावद्यावच्चन्द्रदिवाकरौ ॥४६॥

चाण्डालीसंगमे जाते कश्चिद्भ्रान्त्यापि पापतः ।
प्रायश्चित्तं जगुर्विप्रैः काष्ठलक्षणसंज्ञकम् ॥४७॥

धातकीगुडतोयोत्थं मद्यं सूत्रामणौ द्विजैः ।
गृहीतं चेति मूढात्मा वेदमूढः स विप्रकः ॥४८॥

पीत्वा मद्यं प्रमत्तोऽसौ त्यक्तकोपीनकः कुधीः ।
विधाय नर्त्तनं कष्टं क्षुधासंपीडितस्ततः ॥४९॥

भक्षित्वा च पलं तस्मात् प्रज्वलन्कामवह्निना ।
चाण्डालीसंगमं कृत्वा दुर्गतिं सोऽपि संययौ ॥५०॥

तस्मात्तत्त्यज्यते सद्भिर्मद्यं दुःखशतप्रदम् ।
संगतिश्चापि संत्याज्या मद्यपानविधायिनाम् ॥५१॥

गणिकासंगमेनापि पापराशिः प्रकीर्त्तितः ।
मद्यमांसरतत्वाच्च परस्त्रीदोषतस्तथा ॥५२॥

पापर्ध्या ब्रह्मदत्ताद्याः क्षितीशाश्च क्षयं गताः ।
चौर्येण शिवभूत्याद्या रावणाद्याः परस्त्रिया ॥५३॥

तस्मादाखेटकं चौर्यं परस्त्री श्वभ्रकारणम् ।
दौर्जन्यं च सदा त्याज्यं सद्भिः पापप्रदायकम् ॥५४॥

अणुव्रतानि पञ्चोच्चैस्त्रिप्रकारं गुणव्रतम् ।
शिक्षाव्रतानि चत्वारि पालनीयानि धीधनैः ॥५५॥

सारधर्मविदा नित्यं संत्याज्यं रात्रिभोजनम् ।
अगालितं जलं हेयं धर्मतत्त्वविदांवरैः ॥५६॥

मांसव्रतविशुद्ध्यर्थं चर्मवारिघृतादिकम् ।
संधानकं सदा त्याज्यं दयाधर्मपरायणैः ॥५७॥

भोजनं परिहर्तव्यं मद्यमांसादिदर्शने ।
श्रावकाणां तथा हेयं कन्दमूलादिकं सदा ॥५८॥

पात्रदानं सदा कार्यं स्वशक्त्या शर्मसाधनम् ।
आहाराभयभैषज्यशास्त्रदानविकल्पभाक् ॥५९॥

पूजा श्रीमज्जिनेन्द्राणां सदा सद्गतिदायिनी ।
संस्तुतिः सन्मतिर्जापे सर्वपापप्रणाशिनी ॥६०॥

शास्त्रस्य श्रवणं नित्यं कार्यं सन्मतिरक्षणम् ।
लक्ष्मी क्षेमयशःकारि कर्मास्रवनिवारणम् ॥६१॥

अन्ते सल्लेखना कार्या जैनतत्त्वविदांवरैः ।
परिग्रहं परित्यज्य सर्वशर्मशतप्रदा ॥६२॥

इत्यादि धर्मसद्भावं श्रुत्वा ते भूमिपादयः ।
सर्वे तं सुगुरुं नत्वा परमानन्दनिर्भराः ॥६३॥

केचिद्भव्या व्रतं शीलं सोपवासं जिनोदितम् ।
सम्यक्त्वपूर्वकं लात्वा विशेषेण वृषं श्रिताः ॥६४॥

तदा वृषभदासस्तु श्रेष्ठी वैराग्यमानसः ।
चित्ते संचिन्तयामास संसारासारतादिकम् ॥६५॥

यौवनं जरसाक्रान्तं सुखं दुःखावसानकम् ।
शरदभ्रसमा लक्ष्मीर्लोकेन स्थिरतां व्रजेत् ॥६६॥

अहो मोहमहाशत्रुवशीभूतेन नित्यशः ।
वृथा कालो मया नीतो रामाकनकतृष्णया ॥६७॥

पुत्रमित्रकलत्रादि सर्वं बुद्‌बुदसंनिभम् ।
भोगा भोगीन्द्रभोगाभाः सद्यः प्राणप्रहारिणः ॥६८॥

यमः पापी खलः क्रूरः प्राणिनां प्राणनाशकृत् ।
समीपस्थोऽपि न ज्ञातो मया मुग्धेन तत्त्वतः ॥६९॥

कांश्चिद्‌गृह्णाति गर्भस्थान् बालकान् यौवनोचितान् ।
सस्वान् निःस्वान् गृहे वासान् वनस्थांस्तापसानपि ॥७०॥

हन्ति दण्डी दुरात्मात्र सर्वान् दावानलोपमः ।
मन्यमानस्तृणं चित्ते ये जगद्‌बलिनो भुवि ॥७१॥
रूपलक्ष्मीमदोपेताः परिवारैः परिष्कृताः ।
तानपि क्षणतः पापी क्षयं नयति सर्वथा ॥७२॥

तस्माद्यावदसौ कायः स्वस्थः पटुभिरिन्द्रियैः ।
यावदन्तं न यात्यायुः करिष्ये हितमात्मनः ॥७३॥

चिन्तयित्वेति पूतात्मा श्रेष्ठी निर्वेदतत्परः ।
समाधिगुप्तनामानं तं प्रणम्य कृताञ्जलिः ॥७४॥

प्रोवाच भो मुने स्वामिन् भव्याम्भोरुहभास्करः ।
त्वं सदा श्रीजिनेन्द्रोक्तस्याद्वादाम्बुधिचन्द्रमाः ॥७५॥

शारदेन्दुतिरस्कारिकीर्तिव्याप्तजगत्त्रयः ।
सारासारविचारज्ञः पञ्चाचारधुरंधरः ॥७६॥

षडावश्यकसत्कर्मशिथिलीकृतबन्धनः ।
परोपकारसंभारपवित्रीकृतभूतलः ॥७७॥

देहि दीक्षां कृपां कृत्वा जैनीं पापप्रणाशिनीम् ।
सोऽपि भट्टारकः स्वामी मत्वा तन्निश्चयं ध्रुवम् ॥७८॥

यथाभीष्टमहो भव्य कुरु त्वं स्वात्मनो हितम् ।
इत्युवाच शुभां वाणीं ज्ञानिनो युक्तिवेदिनः ॥७९॥

गुरोराज्ञां समादाय श्रेष्ठी वृषभदासवाक् ।
पुनर्नत्वा जिनान् सिद्धान् गुरोः पादाम्बुजद्वयम् ॥८०॥

सुदर्शनं नरेन्द्रस्य समर्प्य विनयोक्तिभिः ।
एतस्य पालनं राजन् भवद्भिः क्रियते सदा ॥८१॥

श्रीमतां सारपुण्येन करोमि हितमात्मनः ।
इत्याग्रहेण तेनापि सोऽनुज्ञातः प्रशस्य च ॥८२॥

श्रेष्ठिन् संसारकान्तारे धन्यास्तेऽत्र भवादृशाः ।
ये कुर्वन्ति निजात्मानं पवित्रं जिनदीक्षया ॥८३॥

ततः श्रेष्ठी प्रहृष्टात्मा जिनस्नपनपूजनम् ।
कृत्वा बन्धून् समापृच्छ्य विनयैर्मधुरोक्तिभिः ॥८४॥

बाह्याभ्यन्तरसंभूतं परित्यज्य परिग्रहम् ।
दत्वा सुदर्शनायाशु धनं धान्यादिकं परम् ॥८५॥

निजं श्रेष्ठिपदं चापि क्षमां कृत्वा समन्ततः ।
दीक्षामादाय निःशल्यो मुनिर्जातो विचक्षणः । ८६॥

श्रेष्ठिनी जिनमत्याख्या तदा तद्गुरुपादयोः ।
युग्मं प्रणम्य मोहादिपरिग्रहपराङ्मुखा ॥८७॥

वस्त्रमात्रं समादाय लात्वा दीक्षां यथोचिताम् ।
संश्रिता भक्तितः काचिदार्यिकां शुभमानसाम् ॥८८॥

एवं तौ द्वौ जिनेन्द्रोक्तं तपः कृत्वा सुनिर्मलम् ।
समाधिना ततः काले स्वर्गसौख्यं समाश्रितौ ॥८९॥

स्थितौ तत्र स्वपुण्येन परमानन्दनिर्भरौ ।
जिनेन्द्रतपसा लोके किमसाध्यं सुखोत्तमम् ॥९०॥

इतः सुदर्शनो धीमान् प्राप्य श्रेष्ठिपदं शुभम् ।
राज्यमान्यो गुणैर्युक्तः सत्यशौचक्षमादिभिः ॥९१॥

पितुः सत्संपदां प्राप्य स्वार्जितां च विशेषतः ।
भुञ्जन् भोगान मनोऽभीष्टान् विपुण्यजनदुर्लभान् ॥९२॥

मनोरमाप्रियोपेतः सज्जनैः परिवारितः ।
इन्द्रो वात्र प्रतीन्द्रेण स्वपुत्रेण विराजितः ॥९३॥

श्रीजिनेन्द्रपदाम्भोजपूजनैकपवित्रधीः ।
सम्यग्दृष्टिर्जिनेन्द्रोक्तश्रावकाचारतत्परः ॥९४॥

पात्रदानप्रवाहेण श्रेयो राजाथवापरः
दयालुः परमोदारो गम्भीरः सागरादपि ॥९५॥

मनोरमालतोपेतः पुत्रपल्लवसंचयः ।
कुर्वन् परोपकारं स कल्पशाखीव संबभौ ॥९६॥

जिनेन्द्रभवनोद्धारं प्रतिमाः पापनाशनाः ।
तत्प्रतिष्ठां जगत्प्राणितर्पिणीं वा घनावलीम् ॥९७॥

कुर्वन् जिनोदितं धर्मं राज्यकार्येषु धीरधीः ।
त्रिसन्ध्यं जिनराजस्य वन्दनाभक्तितत्परः ॥९८॥

तस्थौ सुखेन पूतात्मा सज्जनानन्ददायकः ।
शृण्वन् वाणीं जिनेन्द्राणां नित्यं सद्गुरुसेवनात् ॥९९॥

तस्य किं वर्ण्यते धर्मप्रवृत्तिर्भुवनोत्तमा ।
यां विलोक्य परे चापि बहवो धर्मिणोऽभवन् ॥१००॥

इत्थं सारजिनेन्द्रधर्मरसिकः सद्दानमानादिभि-
र्नित्यं चारुपरोपकारचतुरो राजादिभिर्मानितः ।
नानारत्नसुवर्णवस्तुनिकरैः श्रीसज्जनैर्मण्डितः
श्रेष्ठी सारसुदर्शनो गुणनिधिस्तस्थौ सुखं मन्दिरे ॥१०१॥

इति सुदर्शनचरिते पञ्चनमस्कारमाहात्म्यप्रदर्शके मुमुक्षु-
श्रीविद्यानन्दिविरचिते सुदर्शनश्रेष्ठिपदप्राप्ति-
व्यावर्णनो नाम पञ्चमोऽधिकार. ॥

षष्ठोऽधिकारः

अथैकदा स्वपुण्येन रूपसौभाग्यसुन्दरः ।
श्रेष्ठी सुदर्शनो धीमान् स्वकार्यार्थं पुरे क्वचित् ॥१॥

संव्रजन् शीलसंपन्नः परस्त्रीषु पराङ्मुखः ।
श्रावकाचारपूतात्मा जिनभक्तिपरायणः ॥२॥

कपिलस्य गृहासन्ने यदा यातो नताननः ।
दृष्टः कपिलया तत्र रूपरञ्जितसज्जनः ॥३॥

तदा सा लम्पटा चित्ते कामबाणकरालिता ।
चिन्तयामास तद्रूपं भुवनप्रीतिकारकम् ॥४॥

यदानेन समं कामक्रीडां कुर्वे निजेच्छया ।
तदा मे जीवितं जन्म यौवनं सफलं भुवि ॥५॥

अन्यथा निष्फलं सर्वं निर्जने कुसुमं यथा ।
चिन्तयित्वेति विप्रस्त्री कपिला स्मरविह्वला ॥६॥

कार्यार्थं कपिले क्वापि गते तस्मिन्निजेच्छया ।
स्वसखीं प्राह भो मातः सुदर्शनमिमं शुभम् ॥७॥

त्वं समानीय मे देहि कामदाहप्रशान्तये ।
नो चेन्मां विद्धि भो भद्रे संप्राप्तां यममन्दिरम् ॥८॥

अयं मे सर्वथा सत्यमुपकारो विधीयते ।
त्वदन्या मे सखी नास्ति प्राणसंधारणे ध्रुवम् ॥९॥

यथा तारातती व्योम्नि चन्द्रज्योत्स्ना तमःप्रहा ।
सत्यं कामातुरा नारी चञ्चला किं करोति न ॥१०॥

तदाकर्ण्य सखी सापि प्रेरिता पापिनी तया ।
गत्वा द्रागवचने चञ्चुस्तत्समीपं प्रपञ्चिनी ॥११॥

कृत्वा हस्तपुटं प्राह शृणु त्वं शुभगोत्तम ।
सखा ते कपिलो विप्रो महाज्वरकदर्थितः ॥१२॥
बालमित्रं भवानुच्चैर्नागतोऽसि कथं किल ।
तन्निशम्य सुधीः सोऽपि सुदर्शनवणिग्वरः ॥१३॥
तां जगौ शृणु भो भद्रे न जानेऽहं च सर्वथा ।
इदानीमेव जानामि तवोक्त्या शपथेन च ॥१४॥
गदित्वेति तया सार्द्धं चलितो मित्रवत्सलः ।
हा मया जानता कैश्चिद्वासरैः सुहृदुत्तमः ॥१५॥
प्रमादाद्वीक्षितो नैव चिन्तयन्निति मानसे ।
यावत्तद्गृहमायाति तावत्सा कपिला खला ॥१६॥
कामासक्ता स्वशृङ्गारं कृत्वा स्रक्चन्दनादिभिः ।
भूमावुपरि पल्यङ्के कोमलास्तरणान्विते ॥१७॥
कच्छपीव सुवस्त्रेण स्वमाच्छाद्य सुखं स्थिता ।
लम्पटा स्त्री दुराचारप्रकारचतुरा किल ॥१८॥
यथा देवरते रक्ता यशोधरनितम्बिनी ।
अन्या वीरवती चापि दुष्टा गोपवती यथा ॥१९॥
दुष्टाः किं किं न कुर्वन्ति योषितः कामपीडिताः ।
या धर्मवर्जिता लोके कुबुद्धिविषदूषिताः ॥२०॥
तदा प्राप्तः सुधीः श्रेष्ठी जगौ भद्रे क मे सखा ।
तयोक्तं चोपरिस्थाने मित्रं ते तिष्ठति द्रुतम् ॥२१॥
एकाकिना त्वया श्रेष्ठिन् गम्यते हितचेतसा ।
तन्निशम्य सुधीः सोऽपि मित्रं द्रष्टुं समुत्सुकः ॥२२॥
श्रेष्ठी सहागतान् सर्वान् परित्यज्य विचक्षणः ।
गत्वा तत्र च पल्यङ्के स्थित्वा प्राह पवित्रधीः ॥२३॥
क तेऽनिष्टं शरीरेऽभूद् ब्रूहि भो मित्रमुख्य ।
कियन्तो दिवसा जाताः कथा नाकर्णिता मया ॥२४॥

औषधं क्रियते किं वा वचो मे देहि शर्मदम् ।
को वा वैद्यः समायाति कराब्जं मित्र दर्शय ॥२५॥

एवं यावत्सुधीर्मित्रस्नेहेन वदति द्रुतम् ।
तावत्सापि करं तस्य गृहीत्वा हृदये ददौ ॥२६॥

तां विलोक्य तदा सोऽपि कम्पितो हृदये तराम् ।
सुधीः शीघ्रं समुत्तिष्ठन् पुनर्धृत्वा तयोदितम् ॥२७॥

शृणु त्वं प्राणनाथात्र वचो मे जितमन्मथ ।
सुभोगामृतपानेन कामरोगं व्यपोहय ॥२८॥

त्वदन्यो नास्ति मे वैद्यश्चिकित्साकर्मकोविदः ।
तवाधरसुधाधारां देहि मे साम्प्रतं द्रुतम् ॥२९॥

यतः कामाग्निशान्तिर्मे संभवेत्प्राणवल्लभ ।
स्मरबाणव्रणे देहे पट्टं वालिङ्गनं कुरु ॥३०॥

इदं चूर्णं तवैवास्ति यद्देहि मुखचुम्बनम् ।
प्राणान् मे गत्वरान् स्वामिन् रक्ष त्वं सुभगोत्तम ॥३१॥

यन्मयालपितं नाथ कामबाणप्रपीडया ।
तत्त्वं सर्वप्रकारेण मदाशां पूरय प्रभो ॥३२॥

इत्यादिकं समाकर्ण्य तद्वाक्यं पापकारणम् ।
तदा सुदर्शनः श्रेष्ठी स्वचित्ते चकितस्तराम् ॥३३॥

चिन्तयामास पूतात्मा गृहीतस्तु तया दृढम् ।
मनोरमां परित्यज्य परनारी स्वसा मम ॥३४॥
धर्मदृग्ज्ञानसद्वृत्तरत्नचोरणतस्करी ।
अस्मात् कथं मया शीघ्रं गम्यते शीलसागरः ॥३५॥
अधोमुखः क्षणं ध्यात्वा मानसे चतुरोत्तमः ।
तदोवाच वचः शीघ्रं कामाग्निज्वलितां प्रति ॥३६॥
भो भद्रे त्वं न जानासि वचस्ते निःफलं गतम् ।
किं करोमि विशालाक्षि षण्ढत्वं मयि वर्त्तते ॥३७॥

कर्मणामुदयेनात्र बहीरम्यं वपुश्च मे ।
इन्द्रवारुणिकं वात्र फलं मेऽस्ति शरीरकम् ॥३८॥
अस्माकं च कदाप्यत्र वार्त्ता मित्रेण नोदिता ।
तवाग्रे सर्वविप्राणां कुलाम्भोरुहभानुना ॥३९॥
इति श्रुत्वा वचस्तस्य मानसोद्वेगकारकम् ।
हताशा स्वमुखं कृत्वा कृष्णवर्णं सुदुःखिता ॥४०॥
मानभङ्गं तरां प्राप्य कपिला कुलनाशिनी ।
स्वकरात्तं विमुच्याशु स्थिता सा चाप्यधोमुखी ॥४१॥
अस्थाने येऽत्र कुर्वन्ति भोगाशां पापवञ्चिताः ।
ते सदा कातरा लोके मानभङ्गं प्रयान्ति च ॥४२॥
सोऽप्यगात्स्वगृहं शीघ्रं व्याघ्यात्रस्तो मृगो यथा ।
मत्वेति दुष्टयोषित्सु विश्वासो न विधीयते ॥४३॥
ये सन्तो भुवने भव्या जिनेन्द्रवचने रताः ।
येन केन प्रकारेण शीलं रक्षन्ति शर्मदम् ॥४४॥
ये परस्त्रीरता मूढा निकृष्टास्ते महीतले ।
दुःखदारिद्र्यदुर्भाग्यमानभङ्गं प्रयान्ति ते ॥४५॥
ज्ञात्वेति मानसे सत्यं जिनोक्तं शर्मदं वचः ।
शीलरत्नं प्रयत्नेन पालनीयं सुखार्थिभिः ॥४६॥
ततः श्रेष्ठी विशुद्धात्मा स भव्यः श्रीसुदर्शनः ।
स्वशीलरक्षणे दक्षो यावत्संतिष्ठते सुखम् ॥४७॥
कुर्वन् धर्मं जिनप्रोक्तं सर्वप्राणिसुखावहम् ।
तावन्मधुः समायातो मासो जनमनोहरः ॥४८॥
वनस्पतिनितम्बिन्याः प्रियो वा प्रमदप्रदः ।
कामिनां सुतरां रम्यो महोत्सवविधायकः ॥४९॥
जलाशयानपि व्यक्तं सुविरजीकुर्वंस्तराम् ।
विरेजे स मधुर्नित्यं संगमो वा सतां हितः ॥५०॥

वस्त्राभरणसंयुक्तान् प्रमोदभरनिर्भरान् ।
जनान् कुर्वन् सुखोपेतान् स सुराजेव संबभौ ॥५१॥
चम्पकाम्रवसन्तादीन् पादपान् पल्लवान्वितान् ।
फलपुष्पादिसंपन्नान् वितन्वन् सज्जनो यथा ॥५२॥
मधोरागमने तत्र प्रमोदभरिताशयः ।
धात्रीवाहनभूपालः परिच्छदपरिष्कृतः ॥५३॥
छत्रचामरवादित्रैः सर्वस्वान्तःपुरादिभिः ।
सर्वैः पौरजनैर्युक्तः क्रीडनार्थं वनं ययौ ॥५४॥
तत्राभयमती राज्ञी गच्छन्ती संविलोक्य सा ।
रूपं सुदर्शनस्योच्चैर्महाप्रीतिविधायकम् ॥५५॥
अहो रूपमहो रूपं भुवनक्षोभकारणम् ।
मोहिता मानसे गाढं चक्रे तस्य प्रशंसनम् ॥५६॥
तन्निशम्य तदा प्राह कपिला ब्राह्मणी वचः ।
अहो देवि प्रषण्ढोऽयं मानवो रूपवानपि ॥५७॥
किमस्य रूपसंपत्त्या पुरुषत्वेन हीनया ।
वल्ल्या निष्फलया वात्र महाकोमलया भुवि ॥५८॥
अमार्गेऽथ रथारूढां राज्ञी वीक्ष्य मनोरमाम् ।
सुपुत्रां रूपलावण्यमण्डितां परमोदयाम् ॥५९॥
प्राहेयं वनिता कस्य सपुत्रा गुणभूषणा ।
सफला कल्पवल्लीव कोमला शर्मदायिनी ॥६०॥
तदाकर्ण्य सुधीः काचित्तद्दासी तां च संजगौ ।
अहो देवि सुपुण्यात्मा राजश्रेष्ठी सुदर्शनः ॥६१॥
गुणरत्नाकरो भव्यः सज्जनानन्ददायक. ।
तस्येयं कामिनी दिव्या सपुत्रा कुलदीपिका ॥६२॥
अभया तत्समाकर्ण्य दासीवाक्यं मनोहरम् ।
विश्वासकारणं तत्र हसित्वा कपिलां जगौ ॥६३॥

मन्येऽहं वञ्चिता त्वं च विप्रे तेन महाधिया।
पुण्यवाँल्लक्षणोपेतः स किं तादृग्विधो भवेत् ॥६४॥

यस्य पुत्रो मया दृष्टः सर्वलक्षणमण्डितः।
अतस्त्वं ब्राह्मणी लोके सत्यं पश्चिमबुद्धिभाक् ॥६५॥

हसित्वा कपिला प्रोक्त्वा स्ववृत्तं यत्पुराकृतम्।
राजपत्नीं पुनः प्राह शृणु त्वं देवि मद्वचः ॥६६॥

सौभाग्यं च सुरूपत्वं चातुर्यं च तथापि ते।
अस्यानुभवनान्मन्ये साफल्यं नान्यथा भुवि ॥६७॥

ऊचे सा भूपतेर्भार्याभयाख्या पापनिर्भया।
यद्येनं नैव सेवामि म्रियेऽहं सर्वथा तदा ॥६८॥

कुस्त्रियः साहसं किं वा नैव कुर्वन्ति भूतले।
कामाग्निपीडिताः कष्टं नदी वा कूलयुक्तया ॥६९॥

प्रतिज्ञायेति सा राज्ञी कृत्वा क्रीडां वने ततः।
आगत्य मन्दिरं तल्पे पपातानङ्गपीडिता ॥७०॥

स्मराग्निज्वलिता गाढं प्रलपन्ती यथा तथा।
निद्रासनादिभिर्मुक्ता कामिनां क्वास्ति चेतना ॥७१॥

तादृशीं तां समालोक्य कामबाणैः समाकुलाम्।
प्रोवाच पण्डिता धात्री किं ते जातं सुते वद ॥७२॥

महिषी धात्रिकां प्राह स्ववार्तां चित्तसंस्थिताम्।
रतिः सुदर्शनेनामा यदि स्यान्मे च जीवितम् ॥७३॥

लज्जादिकं परित्यज्य राज्ञी कामातुरा जगौ।
सर्वं पापप्रदं वाक्यं कामिनां क्व विवेकिता ॥७४॥

तं निशम्य पुनः प्राह पण्डिता पापभीरुता।
कर्णौ पिधाय हस्ताभ्यां स्वशिरो धून्वती मुहुः ॥७५॥

शृणु त्वं देवि वक्ष्येऽहं तावद्धर्मो यशः सुखम्।
यावच्चित्ते भवेन्नित्यं शीलरत्नं जगद्धितम् ॥७६॥

स्त्रियश्चापि विशेषेण शोभन्ते शीलमण्डिताः ।
अन्यथा विषवल्लर्यो रूपाद्यैः संयुता अपि ॥७७॥

कामाकुलाः स्त्रियः पापा नैव पश्यन्ति किंचन ।
कार्याकार्ये यथान्धोऽपि पापतो विकलाशयः ॥७८॥

स्वेच्छया कार्यमाधातुं विरुद्धं योषितां भवेत् ।
यथामृतमहादेवी कुब्जकासक्तमानसा ॥७९॥

पतिं समातृकं हत्वा संप्राप्ता नरकक्षितिम् ।
तथा ते कथमुत्पन्ना कुबुद्धिः पापपाकतः ॥८०॥

सुखी दुःखी कुरूपी च निर्धनो धनवानपि ।
पित्रा दत्तो वरो योऽसौ स सेव्यः कुलयोषिताम् ॥८१॥

भर्ता ते भूपतिर्मान्यो रूपादिगुणसंचयैः ।
तस्य किं क्रियते देवि वञ्चनं पापकारणम् ॥८२॥

भद्रं न चिन्तितं भद्रे त्वयेदं कर्म निन्दितम् ।
तस्मात्स्वकुलरक्षार्थं स्वचित्तं त्वं वशीकुरु ॥८३॥

तथा त्वं स्मर भो पुत्रि सुशीलाः सारयोषितः ।
तीर्थेशां जननी सीताचन्दनाद्रौपदीमुखाः ॥८४॥

नीली प्रभावती कन्या दिव्यानन्तमतीमुखाः ।
याः स्वशीलप्रभावेन पूजिता नृसुरादिभिः ॥८५॥

परस्त्रीः परभर्तॄंश्च परद्रव्यं नराधमाः ।
ये वाञ्छन्ति स्वपापेन दुर्गतिं यान्ति ते खलाः ॥८६॥

सुदर्शनोऽपि पूतात्मा परस्त्रीषु पराङ्मुखः ।
श्रावकाचारसंपन्नो जिनेन्द्रवचने रतः ॥८७॥

स्वयोषित्यपि निर्मोहः सेवनं कुरुतेऽल्पकम् ।
कथं स कुरुते भव्यः परस्त्रीस्पर्शनं सुधीः ॥८८॥

तथा कुलस्त्रिया चापि परित्यज्य निजं पतिम् ।
सर्वथा नैव कर्तव्या परपुंसि मतिर्ध्रुवम् ॥८९॥

इत्यादिकं शुभं वाक्यं पण्डितायाः सुखप्रदम् ।
तस्याश्चित्तेऽभवत्कष्टं सज्वरे वा घृतादिकम् ॥९०॥

कोपं कृत्वा जगौ राज्ञी सर्वं जानामि साम्प्रतम् ।
किं तु तेन विना शीघ्रं प्राणा मे यान्ति निश्चितम् ॥९१॥

परोपदेशने नित्यं सर्वोऽपि कुशलो जनः ।
अहमेवंविधोपायान् बहून् वक्तुं क्षमा भुवि ॥९२॥

येनाकर्णितमात्रेण चित्तं मे भिद्यतेतराम् ।
तेन स्याद्यदि संबन्धः सौख्यं मे सर्वथा भवेत् ॥९३॥

कामतुल्योऽस्ति मे भर्ता गुणवानपि भूतले ।
तथापि मे मनोवृत्तिस्तस्मिन्नेव प्रवर्तते ॥९४॥

व्रजन्त्या च मयोद्याने सख्या कपिलया समम् ।
प्रतिज्ञा विहिता मातः सुदर्शनविदा सह ॥९५॥

चेदहं न रतिक्रीडां करोम्यत्र तदा म्रिये ।
अतो भ्रान्तिं परित्यज्य मानसे प्राणवल्लभे ॥९६॥

त्वया च सर्वथा शीघ्रं यथा मे वाञ्छितं भवेत् ।
निर्विकल्पेन कर्तव्यं तथा किं बहुजल्पनैः ॥९७॥

इत्याग्रहं समाकर्ण्य तयोक्तं पण्डिता तदा ।
स्वचित्ते चिन्तयामास हा कष्टं स्त्रीदुराग्रहः ॥९८॥

यथा प्रेतवने रक्षः कश्मले मक्षिकाकुलम् ।
निम्बे काको बको मत्स्ये शूकरो मलभक्षणे ॥९९॥

खलो दुष्टस्वभावे च परद्रव्येषु तस्करः ।
प्रीतिं नैव जहात्यत्र तथा कुस्त्री दुराग्रहम् ॥१००॥

अथवा यद्यथा यत्रावश्यंभावि शुभाशुभम् ।
तत्तथा तत्र लोकेऽस्मिन् भवत्येव सुनिश्चितम् ॥१०१॥

अहं चापि पराधीना सर्वथा किं करोम्यलम् ।
इत्याख्याय जगौ देवीं भो सुते शृणु मद्वचः ॥१०२॥

एकपत्नीव्रतोपेतो दुस्साध्यः श्रीसुदर्शनः ।
अगम्यं भवनं पुंसां सप्तप्राकारवेष्टितम् ॥१०३॥

यद्यप्येतत्तव प्राणरक्षार्थं हृदि वर्तते ।
दुराग्रहो ग्रहो वात्र तदुपायो विधीयते ॥१०४॥

यावत्तावत्त्वया चापि मुग्धे प्राणविसर्जनम् ।
कर्तव्यं नैव तद् बाले कुर्वेऽहं वाञ्छितं तव ॥१०५॥

इत्यादिकं गदित्वाशु पण्डिता तां नृपप्रियाम् ।
समुद्धीर्य तदा तस्यास्तत्कार्यं कर्तुमुद्यता ॥१०६॥

युक्तं लोके पराधीनः किं वा कार्यं शुभाशुभम् ।
कर्मणा कुरुते नैव वशीभूतो निरन्तरम् ॥१०७॥

स जयतु जिनदेवो योऽत्र कर्मारिजेता
सुरपतिशतपूज्यः केवलज्ञानदीपः ।
सकलगुणसमग्रो भव्यपद्मौघभानुः
परमशिवसुखश्रीवल्लभश्चिन्मयात्मा ॥१०८॥

इति सुदर्शनचरिते पञ्चनमस्कारमाहात्म्यप्रदर्शके मुमुक्षु-
श्रीविद्यानन्दिविरचिते कपिलानिराकरणाभयमती-
व्यामोहविजृम्भणव्यावर्णनो नाम
षष्ठोऽधिकारः ॥

सप्तमोऽधिकारः

अथ श्रीजिननाथोक्तश्रावकाचारकोविदः ।
श्रेष्ठी सुदर्शनो नित्यं दानपूजादितत्परः ॥१॥

अष्टम्यादिचतुःपर्वदिनेषु बुधसत्तमः ।
उपवासं विधायोच्चैः कर्मणां निर्जराकरम् ॥२॥

रात्रौ प्रेतवनं गत्वा योगं गृह्णाति तत्त्ववित् ।
धौतवस्त्रान्वितश्चापि मुनिर्वा देहनिस्पृहः ॥३॥

तन्मत्वा पण्डिता सापि तमानेतुं कृतोद्यमा ।
कुम्भकारगृहं गत्वा कारयित्वा च मृण्मयान् ॥४॥

सप्त पुत्तलकान् शीघ्रं नराकारान् मनोहरान् ।
ततः सा प्रतिपद्यस्ते संध्यायां धृष्टमानसा ॥५॥

एकं स्कन्धे समारोप्य वस्त्रेणाच्छाद्य वेगतः ।
भूपतेर्भवनं यावत्समायाति मदोद्धता ॥६॥

तावत्प्रतोलिकां प्राप्तां प्रतीहारस्तु तां जगौ ।
किं रे स्कन्धे समारोप्य नरं वा यासि सत्वरम् ॥७॥

सा चोवाच महाधूर्ता किं ते रे दुष्ट साम्प्रतम् ।
अहं देवीसमीपस्था कार्ये निश्शङ्कमानसा ॥८॥

स्वेच्छया सर्वकार्याणि करोम्यत्र न संशयः ।
कस्त्वं वराकमात्रस्तु यो मां प्रति निषेधकः ॥९॥

तदा तेन धृता हस्ते प्रतीहारेण पण्डिता ।
क्षिप्त्वा तं पुत्तलं शीघ्रं शतखण्डं विधाय च ॥१०॥

पश्चात्कोपेन तं प्राह रे रे दुष्ट प्रणष्टधीः ।
पूर्वं केनापि राज्येऽस्मिन् प्रतिषिद्धा न सर्वथा ॥११॥

त्वयायं नाशितः कष्टं राज्ञीपुत्तलको वृथा ।
न ज्ञायते त्वया मूढ राज्ञी कामव्रतोद्यता ॥१२॥

करिष्यति दिनान्यष्टौ पूजां मृन्मयपूरुषे ।
रात्रौ जागरणं चापि तदर्थं प्रेषितास्म्यहम् ॥१३॥

सेयं मूर्तिस्त्वया भग्ना नाशो जातः कुलस्य ते ।
नित्यं मायामया नारी किं पुनः कार्यमाश्रिता ॥१४॥

तदाकर्ण्य प्रतीहारः स भीत्वा निजचेतसि ।
भो मातस्त्वं क्षमां कृत्वा सेवकस्य ममोपरि ॥१५॥

मूढोऽहं नैव जानामि व्रतपूजादिकं हृदि ।
अद्य प्रभृति यत्किंचित्त्वया चानीयते शुभे ॥१६॥

तदानीय विधातव्यं यत्तुभ्यं रोचते हितम् ।
न मया कथ्यते किंचिन्निःशङ्का ह्येहि सर्वदा ॥१७॥

गदित्वेति स तत्पादद्वये लग्नो मुहुर्मुहुः ।
कृते दोषे महत्यत्र साधवो दीनवत्सलाः ॥१८॥

भवन्त्येव तथा मातस्त्वया संक्षम्यतां ध्रुवम् ।
तेनेति प्रार्थिता धात्री क्षान्त्वा स्वगृहमागता ॥१९॥

दिने दिने तया सर्वे द्वारपाला वशीकृताः ।
स्त्रीणां प्रपञ्चवाराशेः को वा पारं प्रयात्यहो ॥२०॥

अथाष्टमीदिने श्रेष्ठी सोपवासो जितेन्द्रियः ।
मुनीन्नत्वा तथारम्भं परित्यज्य च मौनभाक् ॥२१॥

प्रतस्थे पश्चिमे यामे श्मशानं प्रति शुद्धधीः ।
उत्तिष्ठतस्तदा तस्य विलग्नं वसनं क्वचित् ॥२२॥

ब्रुवद्वा तस्य तद्व्याजान्न गन्तव्यं त्वयाद्य भो ।
सुदर्शनोपसर्गस्य न त्वं योग्यो भवस्यहो ॥२३॥

पुनर्गच्छति पन्थानं तस्मिन्मार्गे बभूव च ।
दुर्निमित्तगणो निन्द्यो दक्षिणो रासभो रटन् ॥२४॥

कुष्ठी कृष्णभुजङ्गोऽपि सम्मुखः पवनोऽभवत् ।
नानाविधोपशब्दश्च बभूवातिदुरन्तकः ।।२५।।
शृगाल्यो दुःस्वरं चक्रुरुपसर्गस्य सूचकम् ।
तथापि स्वव्रते सोऽपि दृढचित्तः सुदर्शनः ।।२६।।
गत्वा प्रेतवनं घोरं कातराणां सुदुस्तरम् ।
प्रज्वलच्चितिकारौद्रपावकेन भयानकम् ।।२७।।
रटत्पशुभिराकीर्णं दण्डिनो मन्दिरोपमम् ।
प्रोच्छलद्भस्मसंघातं समलं दुष्टचित्तवत् ।।२८।।
तत्र सोऽपि सुधीः कायोत्सर्गेणास्थात्सुराद्रिवत् ।
निर्जिताक्षो जिताशङ्को जितमोहो जितस्पृहः ।।२९।।
श्रीजिनोक्तमहासप्ततत्त्वचिन्तनतत्परः ।
अहं शुद्धनयेनोच्चैः सिद्धो बुद्धो निरामलः ।।३०।।
सर्वद्वन्द्वविनिर्मुक्तः सर्वक्लेशविवर्जितः ।
चिन्मयो देहमात्रोऽपि लोकमानो विशुद्धिभाक् ।।३१।।
मुक्त्वा कर्माणि संसारे नास्ति मे कोऽपि शत्रुकः ।
धर्मो जिनोदितो मित्रं पवित्रो भुवनत्रये ।।३२।।
दशलाक्षणिको नित्यं देवेन्द्रादिप्रपूजितः ।
येन भव्या भजन्त्युच्चैः शाश्वतस्थानमुत्तमम् ।।३३।।
शरीरं सुदुराचारं पूतिबीभत्सु निर्घृणम् ।
पोषितं च क्षयं याति क्षणार्द्धेनैव दुःखदम् ।।३४।।
अस्थिमांसवसाचर्ममलमूत्रादिभिर्भृतम् ।
चाण्डालगृहसंकाशं संत्याज्यं ज्ञानिनां सदा ।।३५।।
तत्राहं मिलितश्चापि क्षीरनीरवदुत्तमः ।
शुद्धनिश्चयतः सिद्धस्वभावः सद्गुणाष्टकः ।।३६।।
इत्यादिकं सुधीश्चित्ते वैराग्यं चिन्तयंस्तराम् ।
यावदास्ते वणिग्वर्यस्तावत्तत्र समागमत् ।।३७।।

पापिनी पण्डिता प्राह तं विलोक्य कुधीर्वचः ।
त्वं धन्योऽस्ति वणिग्वर्य त्वं सुपुण्योऽसि भूतले ॥३८॥
यदत्र भूपतेर्भार्याभयादिमतिरुत्तमा ।
त्वय्यासक्ता बभूवात्र रूपसौभाग्यशालिनी ॥३९॥
कन्दर्पहस्तभल्लिर्वा जगच्चेतोविदारणी ।
अतस्त्वं शीघ्रमागत्य तदाशां सफलां कुरु ॥४०॥
यद् भुज्यते सुखं स्वर्गे ध्यानमौनादिकश्रमैः ।
तत्सुखं भुङ्क्ष्व भो भद्र तया सार्द्धं त्वमत्र च ॥४१॥
किमेतैस्ते तपःकष्टैः कार्यं कष्टशतप्रदैः ।
इदं सर्वं त्वयारब्धं परित्यज्यैहि वेगतः ॥४२॥
इत्यादिकैस्तदालापैः स श्रेष्ठी ध्यानतस्तदा ।
न चचाल पवित्रात्मा किं वातैश्चाल्यतेऽद्रिराट् ॥४३॥
तदास्तं भास्करः प्राप्तो वान्यायं द्रष्टुमक्षमः ।
सत्यं येऽत्र महान्तोऽपि ते दुर्न्यायपराङ्मुखाः ॥४४॥
तदा संकोचयामासुः पद्मनेत्राणि सर्वतः ।
पद्मिन्यो निजबन्धोश्च वियोगो दुस्सहो भुवि ॥४५॥
भानौ चास्तं गते तत्र चाम्बरे तिमिरोत्करः ।
जजृम्भे सर्वतः सत्यं स्वभावो मलिनामसौ ॥४६॥
रेजे तारागणो व्योम्नि तदा सर्वत्र वर्तुलः ।
नभोलक्ष्म्याः प्रियश्चारुमुक्ताहारोपमो महान् ॥४७॥
गृहे गृहे प्रदीपाश्च रेजिरे सुमनोहराः ।
सस्नेहाः सद्दशोपेताः सुपुत्रा वा तमश्छिदः ॥४८॥
ततः स्ववेश्मसु प्रीता भोगिनो वनितान्विताः ।
नानाविलासभोगेषु रताः संसृतिवर्द्धिनः ॥४९॥
योगिनो मुनयस्तत्र बभूवुर्ध्यानतत्पराः ।
स्वात्मतत्त्वप्रवीणास्ते संसृतिच्छेदकारिणः ॥५०॥

ततोऽम्बरे सुविस्तीर्णे चन्द्रमाः समभूत् स्फुटः ।
स्वकान्त्या तिमिरध्वंसी संस्फुरन् परमोदयः ॥५१॥

जनानां परमाह्लादी जैनवादीव निर्मलः ।
मिथ्यामार्गतमःस्तोमविनाशनपटुर्महान् ॥५२॥

एवं तदा जनैः स्वस्वकर्मसु प्रविजृम्भिते ।
अर्द्धरात्रौ तदा चन्द्रमण्डले मन्दतामिते ॥५३॥

काळरात्रिरिवोन्मत्ता पण्डिता पुनरागता ।
यत्रास्ते स महाधीरो ध्यायन् श्रीपरमेष्ठिनः ॥५४॥

तं प्रणम्य पुनः प्राह त्यक्तकायं सुनिश्चलम् ।
जीवानां ते दयाधर्मो विख्यातो भुवनत्रये ॥५५॥

ततः कामग्रहग्रस्तां महीपतिनितम्बिनीम् ।
त्वदागमनसद्वाञ्छां चातकीं वा घनागमे ॥५६॥

कुर्वतीं शीघ्रमागत्य तत्र तां सुखिनीं कुरु ।
अद्यैव सफलं जातं ध्यानं ते वणिजांपते ॥५७॥

तया सार्द्धं महाभोगान् स्वर्गलोकेऽपि दुर्लभान् ।
कुरु त्वं परमानन्दात् किं परैश्चिन्तनादिभिः ॥५८॥

गदित्वेति पुनर्ध्यानाच्चालनाय पुनश्च सा ।
नानासरागगीतानि सरागवचनैः सह ॥५९॥

चक्रे तथापि धीरोऽसौ यावद् ध्यानं न मुञ्चति ।
तावत्सा पापिनी शीघ्रं साहसोद्धतमानसा ॥६०॥

तं समुद्धृत्य धृष्टात्मा श्रेष्ठिनं ध्यानसंयुतम् ।
स्वस्कन्धे च समारोप्य वस्त्रेणाच्छाद्य वेगतः ॥६१॥

समानीय च तत्तल्पे महामौनसमन्वितम् ।
पातयामास दुष्टात्मा किं करोति न कामिनी ॥६२॥

अभयादिमती वीक्ष्य तं सुरूपनिधानकम् ।
संतुष्टा मानसे मूढा धन्याहं चाद्य भूतले ॥६३॥

दुष्टस्त्रीणां स्वभावोऽयं यद्विलोक्य परं नरम् ।
प्रमोदं कुरुते चित्ते कामबाणप्रपीडिता ॥६४॥
तथाभयमती सा च दुर्मतिः पापकर्मणा ।
शृङ्गारं सुविधायाशु कामिनां सुमनोहरम् ॥६५॥
हावभावादिकं सर्वं विकारं संप्रदर्श्य च ।
जगौ लज्जां परित्यज्य वेश्या वा कामपीडिता ॥६६॥
मत्प्रियोऽसि मम स्वामी प्राणनाथस्त्वमूर्जितः ।
जाता त्वद्रूपसौन्दर्यं वीक्ष्याहं तेऽनुरागिणी ॥६७॥
वल्लभस्त्वं कृपासिन्धुः प्रार्थितोऽसि मयाधुना ।
देहि चालिङ्गनं गाढं मह्यं शान्तिकरं परम् ॥६८॥
इत्यादिकं प्रलापं सा कृत्वा कामाग्निपीडिता ।
निस्त्रपा पापिनी भूत्वा खरी वा भूपभामिनी ॥६९॥
मुखे मुखार्पणैर्गाढमालिङ्गनशतैस्तथा ।
सरागैर्वचनैः कामवह्निज्वालाप्रदीपनैः ॥७०॥
अन्यैर्विकारसंदोहैः कटिस्थानादिदर्शनैः ।
दर्शयित्वा स्वनाभिं च तं चालयितुमक्षमा ॥७१॥
संजाता निर्मदा तत्र निरर्था सुतरां भुवि ।
चञ्चला सुचला चापि न शक्ता काञ्चनाचले ॥७२॥
स भव्यो ध्यानसच्छैलात्स्वव्रते मेरुवद् दृढः ।
नैव तत्र चचालोच्चैर्जिनपादाब्जषट्पदः ॥७३॥
ततो भीत्वा जगौ शीघ्रं पण्डितां सा निरर्थिका ।
यस्मादसौ समानीतस्तत्रायं मुच्यतां त्वया ॥७४॥
तयोक्तं क्व नयाम्येनं प्रातःकालोऽभवत्तराम् ।
पश्य सर्वत्र कुर्वन्ति पक्षिणोऽपि स्वरोत्करम् ॥७५॥
तदाभया स्वचित्ते सा महाचिन्तातुराभवत् ।
किं करोमि क्व गच्छामि पश्चात्तापेन पीडिता ॥७६॥

हा मया सेवितो नैव सुरूपोऽयं सुदर्शनः।
सोऽपि धीरः स्मरति स्म स्वचित्ते संसृतेः स्थितिम् ॥७७॥
अभया चिन्तयामास भुक्ता भोगा न साम्प्रतम्।
सुदर्शनोऽपि सद्धर्मं निर्मलं जिनभाषितम् ॥७८॥
चिन्तयत्यभया चित्ते प्राप्तं मे मरणं ध्रुवम्।
सुदर्शनोऽपि शुद्धात्मा शरणं जिनशासनम् ॥७९॥
पश्चात्तापं विधायाशु सा पुनः पण्डितां प्रति।
प्राहैनं प्रापय स्थानं यत्र कुत्रापि वेगतः ॥८०॥
सोद्विग्ना संजगौ धात्री दिवानाथः समुद्गतः।
न शक्यते मया नेतुं यद्युक्तं तत्समाचर ॥८१॥
तदाकर्ण्याभया भीत्वा मृत्युमालोक्य सर्वथा।
नखैर्विदार्य पापात्मा स्वस्तनौ हृदयं मुखम् ॥८२॥
शीलवत्याः शरीरं मे श्रेष्ठिनानेन दुर्धिया।
कामातुरेण चागत्य ध्वस्तं चक्रे च पूत्कृतिम् ॥८३॥
किं करोति न दुःशीला दुष्टस्त्री कामलम्पटा।
पातकं कष्टदं लोके कुललक्ष्मीक्षयंकरम् ॥८४॥
तत्पूत्कारं समाकर्ण्य तत्रागत्य च किङ्कराः।
तत्र स्थितं तमालोक्य श्रेष्ठिनं विस्मयान्विताः ॥८५॥
राजानं च नमस्कृत्य जगुस्ते भो महीपते।
देवीगृहं समागत्य रात्रौ धृष्टः सुदर्शनः ॥८६॥
कामातुरोऽभयादेव्याः शरीरं चातिसुन्दरम्।
पापी विदारयामास किं कुर्मस्तस्य भो प्रभो ॥८७॥
दुःसहं तत्प्रभुः श्रुत्वा चिन्तयामास कोपतः।
अहो दुष्टः कथं रात्रौ मन्दिरेऽत्र समागतः ॥८८॥
परस्त्रीलम्पटः श्रेष्ठी पाषण्डी परवञ्चकः।
इत्यादिक्रोधदावाग्निसंतप्तो मूढमानसः ॥८९॥

विचारेण विना जानन् स्वराज्ञीपापचेष्टितम् ।
हन्यतां हन्यतां शीघ्रं तान् जगौ पापपातकः ॥९०॥
हन्यः सामान्यचौरोऽत्र किं मया दुष्टमानसा ।
राजद्रोही न हन्तव्यो मम प्राणप्रियारतः ॥९१॥
तदाकर्ण्य च कष्टास्ते किङ्करा निष्ठुरस्वराः ।
तत्रागत्य द्रुतं पापास्तं गृहीत्वा च मस्तके ॥९२॥
निष्काश्य भूपतेर्गेहान्नयन्ति स्म श्मशानकम् ।
अविज्ञातस्वभावा हि किं न कुर्वन्ति दुर्जनाः ॥९३॥
तत्र कष्टशते काले सोऽपि धीरः सुदर्शनः ।
स्वचित्ते भावयामास ममैतत्कर्मजृम्भितम् ॥९४॥
किं कुर्वन्ति वराका मे पराधीनास्तु किङ्कराः ।
शीलरत्नं सुनिर्मूल्यं तिष्ठत्यत्र सुखावहम् ॥९५॥
किमेतेन शरीरेण निस्सारेण मम ध्रुवम् ।
धर्मोऽर्हतां जगत्पूज्यो जयत्वत्र जगद्धितः ॥९६॥
एवं सुनिश्चलो धीमान्मेरुवन्निजमानसे ।
नीतः प्रेतवने चापि तस्थौ ध्यानगृहे सुखम् ॥९७॥
अहो सतां मनोवृत्तिर्भूतले केन वर्ण्यते ।
प्राणत्यागोपसर्गेऽपि निश्चला या जिताद्रिराट् ॥९८॥
तदा पुरेऽभवद्धाहाकारो घोरो महानिति ।
केचिद्वदन्ति धर्मात्मा श्रेष्ठी श्रीमान् सुदर्शनः ॥९९॥
किं करोति कुकर्मासौ श्रावकाचारकोविदः ।
किं वा भानुर्नभोभागे प्रस्फुरन् कुरुते तमः ॥१००॥
एष श्रीमज्जिनेन्द्रोक्तसच्छीलामृतवारिधिः ।
प्राणत्यागेऽपि सच्छीलं त्यजत्येव न सर्वथा ॥१०१॥
अन्ये पौरजनाः प्राहुरहो केनापि पापिना ।
केन वा कारणेनापि कृतं किं वा भविष्यति ॥१०२॥

इत्यादिकं तदा पौराः पश्चात्ताप प्रचक्रिरे ।
सन्तो येऽत्र परेषां हि ते दुःखं सोढुमक्षमाः ॥१०३॥
तथा केनापि तद्वार्त्ता कष्टकोटिविधायिनी ।
शीघ्रं मनोरमायाश्च प्रोक्ता ते प्राणवल्लभः ॥१०४॥
राजपत्नीप्रसङ्गेन शीलखण्डनदोषतः ।
राजादेशेन कष्टेन मार्यते च श्मशानके ॥१०५॥
मनोरमा तदाकर्ण्य कम्पिताखिलविग्रहा ।
रुदन्ती ताडयन्ती च हृदयं शोकविह्वला ॥१०६॥
वाताहता लतेवेयं कल्पवृक्षवियोगतः ।
चचाल वेगतो मार्गे प्रस्खलन्ती पदे पदे ॥१०७॥
हा हा नाथ त्वया चैतत्किं कृतं गुणमन्दिर ।
इत्यादिकं प्रजल्पन्ती तत्रागत्य श्मशानके ॥१०८॥
दुष्टैः संवेष्टितं वीक्ष्य सर्पैर्वा चन्दनद्रुमम् ।
तं जगाद वचो नाथ किं जातं ते विरूपकम् ॥१०९॥
हा नाथ केन दुष्टेन त्वय्येवं दोषसंभवः ।
पापिना विहितश्चापि कष्टकोटिविधायकः ॥११०॥
त्वं सदा शीलपानीयप्रक्षालितमहीतलः ।
श्रीजिनेन्द्रोक्तसद्धर्मप्रतिपालनतत्परः ॥१११॥
किं मेरुश्चलति स्थानात् किं समुद्रो विमुञ्चति ।
मर्यादां त्वं तथा नाथ किं शीलं त्यजसि ध्रुवम् ॥११२॥
हा नाथ स्वप्नके चापि नैव ते व्रतखण्डनम् ।
सत्यं नोदयते भानुः पश्चिमायां दिशि क्वचित् ॥११३॥
अहो नाथात्र किं जातं ब्रूहि मे करुणापर ।
वाक्यामृतेन मे स्वास्थ्यं कुरु त्वं प्राणवल्लभ ॥११४॥
इत्यादि प्रलपन्ती सा यावदास्ते पुरः किल ।
तदा सुदर्शनो धीरः स्वचित्ते चिन्तयत्यलम् ॥११५॥

कस्य पुत्रो गृहं कस्य भार्या वा कस्य बान्धवाः ।
संसारे भ्रमतो जन्तोर्निजोपार्जितकर्मभिः ॥११६॥

अस्थिरं भुवने सर्वं रत्नस्वर्णादिकं सदा ।
संपदा चपला नित्यं चञ्चलेव क्षणार्धतः ॥११७॥

भवेऽस्मिन् शरणं नास्ति देवो वा भूपतिः परः ।
देवेन्द्रो वा फणीन्द्रो वा मुक्त्वा रत्नत्रयं शुभम् ॥११८॥

अत्र कर्मोदयेनोच्चैर्यद्वा तद्वा भवत्वलम् ।
अस्तु मे शरणं नित्यं पञ्चश्रीपरमेष्ठिनः ॥११९॥

एवं सुदर्शनो धीमान्मेरुवन्निश्चलाशयः ।
यावदास्ते सुवैराग्यं चिन्तयंश्चतुरोत्तमः ॥१२०॥

यावत्तस्य गले तत्र कोऽपि गाढं दुराशयः ।
प्रहारं कुरुते खाङ्गं तावत्तच्छीलपुण्यतः ॥१२१॥

कम्पनादासनस्याशु जैनधर्मे सुवत्सलः ।
यक्षदेवः समागत्य जिनपादाब्जषट्पदः ॥१२२॥

स्तम्भयामास तान् सर्वान् दुष्टान् भूपतिकिङ्करान् ।
सुदृष्टिः सहते नैव मानभङ्गं सधर्मिणाम् ॥१२३॥

एवं देवो महाधीरः परमानन्दनिर्भरः ।
उपसर्गं निराचक्रे तस्य धर्मानुरागतः ॥१२४॥

पुष्पवृष्टिं विधायाशु सुगन्धीकृतदिङ्मुखाम् ।
श्रेष्ठिनं पूजयामास सुधीः सज्जनभक्तिभाक् ॥१२५॥

तथा तत्र स्थिता भव्याः परमानन्दनिर्भराः ।
जयकोलाहलं चक्रुः सज्जनानन्ददायकम् ॥१२६॥

तत्समाकर्ण्य भूपालो धात्रीवाहनसंज्ञकः ।
प्रेषयामास दुष्टात्मा पुनर्भृत्यान् सुनिष्ठुरान् ॥१२७॥

यक्षदेवश्च कोपेन तानपि प्रस्फुरत्प्रभः ।
सुधीः संकीलयामास स्वशक्त्या परमोदयः ॥१२८॥

ततः सैन्यं समादाय चतुरङ्गं स्वयं नृपः ।
प्रागमत्तद्वधायाशु कोपकम्पितविग्रहः ॥१२९॥
समर्थो यक्षदेवोऽपि कृत्वा मायामयं बलम् ।
हस्त्यश्वादिकमत्युच्चैः संमुखं वेगतः स्थितः ॥१३०॥
तयोस्तत्र महायुद्धं कातराणां भयप्रदम् ।
समभूत्सुचिरं गाढं चमत्कारविधायकम् ॥१३१॥
शूराशूरि तथान्योन्यमश्वाश्वि च गजागजि ।
दण्डादण्डि महातीव्रं खड्गाखड्गि क्षयंकरम् ॥१३२॥
तस्मिन् महति संग्रामे भूपतेश्छत्रमुन्नतम् ।
अछिनत्सध्वजं देवो यशोराशिवदुज्ज्वलम् ॥१३३॥
तदा भीत्वा नृपो नष्टः प्राणसंदेहमाश्रितः ।
सिंहनादेन वा त्रस्तो गजेन्द्रो मदवानपि ॥१३४॥
यक्षस्तत्पृष्ठतो लग्नस्तर्जयन्निष्ठुरैः स्वरैः ।
मदग्रतः क्व यासि त्वं वराकः प्राणरक्षणे ॥१३५॥
रे रे दुष्ट वृथा कष्टं श्रेष्ठिनो व्रतधारिणः ।
कारितश्चोपसर्गस्तु त्वया स्त्रीवञ्चितेन च ॥१३६॥
जीवितेच्छास्ति चेत्तेऽत्र श्रेष्ठिनः शरणं व्रज ।
जिनेन्द्रचरणाम्भोजसारसेवाविधायिनः ॥१३७॥
तदा सुदर्शनस्यासौ शरणं गतवान्नृपः ।
रक्ष रक्षेति मां शीघ्रं शरणागतमुत्तम ॥१३८॥
त्यजन्ति मार्दवं नैव सन्तः संपीडिता ध्रुवम् ।
ताडितं तापितं चापि काञ्चनं विलसच्छवि ॥१३९॥
तत्समाकर्ण्य स श्रेष्ठी परमेष्ठिप्रसन्नधीः ।
स्वहस्तौ शीघ्रमुद्धृत्य तं समाश्वास्य भूपतिम् ॥१४०॥
तस्य रक्षां विधातुं तं यक्षं पप्रच्छ को भवान् ॥
यक्षदेवस्तदा शीघ्रं श्रेष्ठिनं संप्रणम्य च ॥१४१॥

गदित्वागमनं स्वस्य तथाभयमतीकृतम् ।
उत्थाप्य तद्बलं सर्वं स्वस्य सारप्रभावतः ॥१४२॥

सुदर्शनं समभ्यर्च्य दिव्यवस्त्रादिकाञ्चनैः ।
प्रभावं जिनधर्मस्य संप्रकाश्य ययौ सुखम् ॥१४३॥

सत्यं श्रीमज्जिनेन्द्रोक्तधर्मकर्मणि तत्पराः ।
शीलवन्तोऽत्र संसारे कैर्न पूज्याः सुरोत्तमैः ॥१४४॥

शीलं दुर्गतिनाशनं शुभकरं शीलं कुलोद्योतकं
शीलं सारसुखप्रमोदजनकं लक्ष्मीयशःकारणम् ।
शीलं स्वव्रतरक्षणं गुणकरं संसारनिस्तारणं
शीलं श्रीजिनभाषितं शुचितरं भव्या भजन्तु श्रिये ॥१४५॥

इति सुदर्शनचरिते पञ्चनमस्कारमाहात्म्यप्रदर्शके मुमुक्षु-
श्रीविद्यानन्दिविरचिते अभयाकृतोपसर्गनिवा-
रण-शीलप्रभावव्यावर्णनो नाम
सप्तमोऽधिकार. ।

अष्टमोऽधिकारः

अथ श्रेष्ठीमहाशीलप्रभावं पुण्यपावनम् ।
श्रुत्वा राज्ञी भयत्रस्ता भूपतेः पापकर्मणा ॥१॥

गले पाशं कुधीः कृत्वा मृत्वा सा पाटलीपुरे ।
संजाता व्यन्तरी देवी दुष्टात्मा पापकारिणी ॥२॥

पण्डिता धात्रिका सापि चम्पापुर्याः प्रणश्य च ।
पाटलीपुरमागत्य तत्रस्थां देवदत्तिकाम् ॥३॥

वेश्यां प्रतिजगौ स्वस्य वृत्तकं धृष्टमानसा ।
रूपाजीवापि तच्छ्रुत्वा धात्रिकां प्राह गर्वतः ॥४॥

कपिला किं विजानाति ब्राह्मणी मूढमानसा ।
साभया च भयत्रस्ता चातुरीं किं च वेत्त्यलम् ॥५॥

अहं सर्वं विजानामि कन्दर्परसकूपिका ।
कामशास्त्रप्रवीणा च जगद्रञ्जनतत्परा ॥६॥

मत्कटाक्षशरव्रातैर्हृता हर्यादयोऽपि ये ।
त्यक्त्वा व्रतादिकं यान्ति कस्ते धीरो वणिक्सुतः ॥७॥

उर्वशीव च ब्रह्माणं सुदर्शनमनुत्तरम् ।
सेवेऽहं स्वेच्छया गाढं तदा स्यां देवदत्तिका ॥८॥

प्रतिज्ञामिति सा चक्रे तदग्रे गणिका कुधीः ।
सत्यं कामातुरा नारी न वेत्ति पुरुषान्तरम् ॥९॥

जन्मान्धको यथा रूपं मत्तो वा तत्त्वलक्षणम् ।
तथान्योऽपि न जानाति कामी शीलवतां स्थितिम् ॥१०॥

अथातो नृपतिः श्रुत्वा यक्षेणोक्तं सुनिश्चितम् ।
दुराचारं स्त्रियः स्वस्य पश्चात्तापं विधाय च ॥११॥

हा मया मूढचित्तेन दुष्टस्त्रीवञ्चितेन च।
विचारपरिशून्येन चक्रे साधुप्रपीडनम् ॥१२॥

इत्यादिकं विचार्याशु स्वचित्ते च सुदर्शनम्।
भक्तितस्तं प्रणम्योच्चैर्जगौ भो पुरुषोत्तम ॥१३॥

मयाज्ञानवता तुभ्यं दत्तो दोषो वधादिकृत्।
तथापि क्षम्यतां मेऽत्र दुराचारविजृम्भणम् ॥१४॥

त्वं सदा जिनधर्मज्ञस्त्वं सदा शीलसागरः।
त्वं सदा प्रशमागारं त्वं सदा दोषवर्जितः ॥१५॥

यथा मेरुर्गिरीन्द्राणामिह मध्ये महानहो।
क्षीरसिन्धुः समुद्राणां तथा त्वं भव्यदेहिनाम् ॥१६॥

अतस्त्वं मे कृपां कृत्वा दयारससरित्पते।
अर्धराज्यं गृहाणाशु वणिग्वंशशिरोमणे ॥१७॥

तन्निशम्य स च प्राह भो राजन् भुवनत्रये।
प्राणिनां च सुखं दुःखं शुभाशुभविपाकतः ॥१८॥

अत्र मे कर्मणा जातं यद्वा तद्वा महीतले।
कस्य वा दीयते दोषस्त्वं च राजा प्रजाहितः ॥१९॥

शृणु प्रभो मया चित्ते प्रतिज्ञा विहिता पुरा।
एतस्मादुपसर्गाच्चेदुद्धरिष्यामि निश्चितम् ॥२०॥
ग्रहीष्यामि तदा पञ्चमहाव्रतकदम्बकम्।
भोजनं पाणिपात्रेण करिष्यामि सुयुक्तितः ॥२१॥

ततो मे नियमो राजन् राज्यलक्ष्मीपरिग्रहे।
इत्याग्रहेण सर्वेषां क्षमां चक्रे त्रिशुद्धितः ॥२२॥

युक्तं सतां सदा लोके क्षमासारविभूषणम्।
यथा सर्वक्रियाकाण्डे दर्शनं शर्मकारणम् ॥२३॥
ततो जिनालयं गत्वा पवित्रीकृतभूतलम्।
पूजयित्वा जिनांस्तत्र शक्रचक्रिसमर्चितान् ॥२४॥

तथा स्तुतिं चकारोच्चैर्जय त्वं जिनपुङ्गव ।
जय जन्मजरामृत्युमहागदभिषग्वर ॥२५॥

जय त्रैलोक्यनाथेश सर्वदोषक्षयंकर ।
जय त्वं त्रिजगद्भव्यपद्माकरदिवाकर ॥२६॥

जय त्वं केवलज्ञानलोकालोकप्रकाशक ।
जय त्वं जिननाथात्र विघ्नकोटिप्रणाशक ॥२७॥

जय त्वं धर्मतीर्थेश परमानन्ददायक ।
जय त्वं सर्वतत्त्वार्थसिन्धुवर्धनचन्द्रमाः ॥२८॥

जय सर्वज्ञ सर्वेश सर्वसत्त्वहितंकर ।
जय त्वं जितकन्दर्प शीलरत्नाकर प्रभो ॥२९॥

त्वं देव त्रिजगत्पूज्यस्त्वं सदा त्रिजगद्गुरुः ।
त्वं सदा त्रिजगद्बन्धुस्त्वं सदा त्रिजगत्पतिः ॥३०॥

कर्मणां निर्जयाद्देव त्वं जिनः परमार्थतः ।
त्वमेव मोक्षमार्गो हि साररत्नत्रयात्मकः ॥३१॥

त्वं पापारिहरत्वाच्च हरस्त्वं परमार्थवित् ।
भव्यानां शंकरत्वाच्च शंकरस्त्वं शिवप्रदः ॥३२॥

ज्ञानेन भुवनव्यापी विष्णुस्त्वं विश्वपालकः ।
त्वं सदा सुगतेर्नेता त्वं सुधीर्धर्मतीर्थकृत् ॥३३॥

दिव्यचिन्तामणिस्त्वं च कल्पवृक्षस्त्वमेव हि ।
कामधेनुस्त्वमेवात्र वाञ्छितार्थप्रपूरकः ॥३४॥

सिद्धो बुद्धो निराबाधो विशुद्धस्त्वं निरञ्जनः ।
देवाधिदेवो देवेशसमर्चितपदाम्बुजः ॥३५॥

नमस्तुभ्यं जगद्वन्द्य नमस्तुभ्यं जगद्गुरो ।
नमस्ते परमानन्ददायक प्रभुसत्तम ॥३६॥

अस्तु मे जिनराजोच्चैर्भक्तिस्ते शर्मदायिनी ।
लोकद्वयहिता नित्यं सर्वशान्तिविधायिनी ॥३७॥

इत्यादि संस्तुतिं कृत्वा जिनानां संपदाप्रदाम् ।
पुनः पुनर्नमस्कृत्य ततो भव्यशिरोमणिः ॥३८॥

ज्ञानिनं गुरुमानम्य नाम्ना विमलवाहनम् ।
शुद्धरत्नत्रयोपेतं कुमतान्धतमोरविम् ॥३९॥

संजगाद मुने स्वामिन् सर्वसत्त्वहितंकर ।
पूर्वजन्मप्रसंबन्धं मम त्वं वक्तुमर्हसि ॥४०॥

सोऽपि स्वामी कृपासिन्धुर्भव्यबन्धुर्जगौ मुनिः ।
शृणु त्वं भो महाभव्य सुदर्शन मदीरितम् ॥४१॥

अत्रैव भरतक्षेत्रे पवित्रे धर्मकर्मभिः ।
विन्ध्यदेशे सुविख्याते पुरे कौशलसंज्ञके ॥४२॥

भूपालाख्यो नृपस्तस्य राज्ञी जाता वसुन्धरा ।
लोकपालस्तयोः पुत्रः शूरो वीरो विचक्षणः ॥४३॥

एवं स पुत्रपौत्रादिपरिवारैः परिष्कृतः ।
भूपालो निजपुण्येन कुर्वन् राज्यं सुखं स्थितः ॥४४॥

एकदा तस्य भूपस्य सिंहद्वारे मनोहरे ।
रक्ष रक्षेति भो देव पूत्कारं चक्रिरे जनाः ॥४५॥

तमाकर्ण्य नृपोऽनन्तबुद्धिमन्त्रिणमाजगौ ।
किमेतदिति स प्राह मन्त्री शृणु महीपते ॥४६॥

अस्माद्दक्षिणदिग्भागे गिरौ विन्ध्ये महाबली ।
व्याघ्रनामा च भिल्लोऽस्ति कुरङ्गी नाम तत्प्रिया ॥४७॥

स व्याघ्रो व्याघ्रवत्क्रूरो दुष्टात्मा वा यमोऽधमः ।
अहंकारमदोन्मत्तो नित्यं कोदण्डकाण्डभाक् ॥४८॥

स पापी कुरुते देव प्रजानां पीडनं सदा ।
तस्मादियं प्रजा गाढं पूत्कारं कुरुते प्रभो ॥४९॥

श्रुत्वा भूपालनामा च मन्त्रिवाक्यं नृपो रुषा ।
जगौ कोऽयं कुधीर्भिल्लो मत्प्रजादुःखदायकः ॥५०॥

तथादेशं ददौ सेनापतये याहि सत्वरम् ।
जित्वा भिल्लं समागच्छ दर्पिष्ठं शत्रुकं मम ॥५१॥
सत्यं प्रसिद्धभूपालाः प्रजापालनतत्पराः ।
ये ते नैव सहन्तेऽत्र प्रजापीडनमुत्तमाः ॥५२॥
सेनापतिस्तदा शीघ्रं सारसेनासमन्वितः ।
गत्वा युद्धे जितस्तेन भिल्लराजेन वेगतः ॥५३॥
मानभङ्गेन संत्रस्तः पश्चात्स्वपुरमागतः ।
पुण्यं बिना कुतो लोके जयः संप्राप्यते शुभः ॥५४॥
ततः कोपेन गच्छन्तं भूपालाख्यं स्वयं नृपम् ।
लोकपालः सुतः प्राह नत्वा शृणु महीपते ॥ ५५॥
सेवके मयि सत्यत्र किं श्रीमद्भिः प्रगम्यते ।
गदित्वेति ततो गत्वा सर्वसारबलान्वितः ॥५६॥
युद्धं विधाय तं हत्वा भिल्लं स्वपुरमागमत् ।
दुःसाध्यं स्वपितुर्लोके साधयत्यत्र सत्सुतः ॥५७॥
व्याघ्रो भिल्लपतिः सोऽपि मृत्वा कर्मवशीकृतः ।
गोकुले कुर्कुरो भूत्वा कदाचित्स कृतज्ञकः ॥५८॥
गोपस्त्रीभिश्च कौशाम्बीं सहागत्य जिनालयम् ।
समालोक्य समाश्रित्य किंचिच्छुभयुतोऽभवत् ॥५९॥
मृत्वा ततश्च चम्पायां नरजन्मत्वमाप सः ।
सिंहप्रियाभिधानस्य कस्यचिल्लुब्धकस्य च ॥६०॥
सिंहिन्यां तनयो भूत्वा मृत्वा तत्र पुनः स च ।
चम्पायां सुभगा नाम गोपालः समजायत ॥६१॥
श्रेष्ठिनस्ते पितुः सोऽपि गोपालो मन्दिरेऽभवत् ।
गवां वृषभदासस्य पालकः प्रौढबालकः ॥६२॥
गवां संपालनत्वाच्च सुराजेव जनप्रियः ।
कवेः काव्योपमश्छन्दोगामी सर्वमनोहरः ॥६३॥

हरिर्वा कानने क्रीडन् कपिर्वा तरुषु भ्रमन् ।
अलिर्वा कुसुमास्वादी सुस्वरो वा सुरोत्तमः ॥६४॥

निःशङ्को मानसे नित्यं सद्दृष्टिर्वा स्ववृत्तिषु ।
अप्रमादी च कार्येषु भटो वा बालकोऽपि सन् ॥६५॥

एकदा सुभगः सोऽपि माघमासे सुदुःसहे ।
पतच्छीतभराक्रान्तप्रकम्पितजगज्जने ॥६६॥

संध्याकाले समादाय श्रेष्ठिनो गोकदम्बकम् ।
समागच्छन् वने रम्ये मुनीन्द्रं वीक्ष्य चारणम् ॥६७॥

तारणं भववाराशौ भव्यानां शर्मकारणम् ।
एकत्वभावनोपेतं सङ्गद्वयविवर्जितम् ॥६८॥

रत्नत्रयसमायुक्तं चतुर्ज्ञानसमन्वितम् ।
पञ्चाचारविचारज्ञं पञ्चमीगतिसाधकम् ॥६९॥

महाभक्तिभरोपेतं पञ्चाप्तेषु निरन्तरम् ।
षडावश्यकसत्कर्मप्रतिपालनतत्परम् ॥७०॥

षट्सुजीवदयावल्लीप्रसिञ्चनघनाघनम् ।
षड्लेश्यासुविचारज्ञं सप्ततत्त्वप्रकाशकम् ॥७१॥

सप्तपातालदुःखौघनिवारणविदांवरम् ।
कर्माष्टकक्षयोद्युक्तं मदाष्टकहरं परम् ॥७२॥

नवधा ब्रह्मचर्याढ्यं पदार्थनवकोविदम् ।
जिनोक्तदशधाधर्मप्रतिपालनसंविदम् ॥७३॥

एकादशप्रकारोक्तप्रतिमाप्रतिपादकम् ।
द्वादशोक्ततपोभारसमुद्धरणनायकम् ॥७४॥

द्वादशप्रमितव्यक्तानुप्रेक्षाचिन्तनोद्यतम् ।
त्रयोदशजिनेन्द्रोक्तचारुचारित्रमण्डितम् ॥७५॥

चतुर्दशगुणस्थानप्रविचारणमानसम् ।
प्रमादैः पञ्चदशभिर्विनिर्मुक्तं गुणाम्बुधिम् ॥७६॥

षोडशप्रमितव्यक्तभावनाभावकोविदम् ।
प्रोक्तसप्तदशासंयमकैर्नित्यं विवर्जितम् ॥७७॥

अष्टादशासम्परायज्ञातारं करुणार्णवम् ।
एकोनविंशतिप्रोक्तनाथाध्ययनान्वितम् ॥७८॥

प्रोक्त-विंशति-संख्यानासमाधिस्थानवर्जितम् ।
एकविंशतिमानोक्तसबलानां विचारकम् ॥७९॥

द्वाविंशतिमुनिप्रोक्तपरीषहजयक्षमम् ।
त्रयोविंशतिजैनोक्तश्रुतध्यानपरायणम् ॥८०॥

चतुर्विंशतितीर्थेशसारसेवासमन्वितम् ।
भावनापञ्चविंशत्याराधकं विश्ववन्दितम् ॥८१॥

ज्ञातारं पञ्चविंशत्याः क्रियाणां धर्मसंपदाम् ।
षड्विंशतिक्षमाणां च वेत्तारं नयकोविदम् ॥८२॥

सप्तविंशत्यनागारगुणयुक्तं गुणालयम् ।
अष्टाविंशतिविख्यातसारमूलगुणान्वितम् ॥८३॥

एकोनत्रिंशदाप्रोक्तपापसङ्गक्षयंकरम् ।
प्रोक्तत्रिंशन्मोहनीयस्थानभेदप्रभेदकम् ॥८४॥

एकत्रिंशत्प्रमाणोक्तकर्मपाकप्रवेदिनम् ।
द्वात्रिंशद्वीतरागोपदेशेषु कृतनिश्चयम् ॥८५॥

त्रयस्त्रिंशत्प्रमात्यासादनानां क्षयकारकम् ।
चतुस्त्रिंशत्प्रमाणातिशयसंपत्तिदर्शिनम् ॥८६॥

ध्यायन्तं परमात्मानं मेरुवन्निश्चलाशयम् ।
गुणैरित्यादिभिः पूतमन्यैश्चापि विराजितम् ॥८७॥

स्वचित्ते चिन्तयामास तदा बालो दयापरः ।
एतेन तीव्रशीतेन तरवोऽपि महीतले ॥८८॥

केचिच्च प्रलयं यान्ति कथं स्वामी च तिष्ठति ।
दिगम्बरो गुणाधारो वीतरागोऽतिनिस्पृहः ॥८९॥

अस्मादृशाः सवस्त्राद्याः कम्पन्ते शीतवातकैः ।
दन्तेषु संकटं प्राप्ताः पशवोऽपि सुदुःखिताः ॥९०॥

इत्येवं चिन्तयन् गत्वा गृहं गोपो दयार्द्रधीः ।
काष्ठादिकं समानीय वह्निं प्रज्वाल्य सादरम् ॥९१॥

समन्तान्मुनिनाथस्य नातिदूरं न दुःसहम् ।
उष्णीकृत्य निजौ पाणी तन्मुनेः पाणिपादयोः ॥९२॥

पार्श्वे परिभ्रमन्नुच्चैर्भक्तिभावभरान्वितः ।
शरीरे मर्दनं कृत्वा स्वास्थ्यं चक्रे प्रमोदतः ॥९३॥

एवं रात्रौ महाप्रीत्या सेवां कुर्वन् सुधीः स्थितः ।
सत्यमासन्नभव्यानां गुरुभक्तौ रतिर्भवेत् ॥९४॥

मुनीन्द्रोऽपि सुखं रात्रौ ध्यानं कृत्वा सुनिस्पृहः ।
सूर्योदये दयासिन्धुर्योगं संहृत्य मानसे ॥९५॥

अयमासन्नभव्योऽस्ति मत्वेति प्रमदप्रदम् ।
सप्ताक्षरं महामन्त्रं दत्वा तस्मै जगाद सः ॥९६॥

अनेन मन्त्रराजेन भो सुधीः शृणु निश्चितम् ।
सिद्ध्यन्ति सर्वकार्याणि यान्ति कष्टानि संक्षयम् ॥९७॥

सर्वे विद्याधरा देवाश्चक्रवर्त्यादयो भुवि ।
इमं मन्त्रं समाराध्य प्रापुः स्वर्गापवर्गकम् ॥९८॥

त्वया सर्वत्र कार्येषु गमनागमनेषु वा ।
भोजनादौ सुखे दुःखे समाराध्यो हि मन्त्रराट् ॥९९॥

णमो अरहंताणं

इत्युक्त्वा च मुनिः स्वामी तस्मै परमपावनः ।
स्वयं तमेव सन्मन्त्रं गदित्वागान्नभोऽङ्गणे ॥१००॥

तन्मन्त्रेण मुनेर्वीक्ष्य नभोगमनमुत्तमम् ।
मन्त्रे श्रद्धा तरां तस्य तदाभूद् धर्मदायिनी ॥१०१॥

अथ गोपालकः सोऽपि निधानं वा जगद्धितम् ।
मन्त्रं तं प्राप्य तुष्टात्मा संपठन् परमादरात् ॥१०२॥
भोजने शयने पाने यानेऽरण्ये घने वने ।
पशूनां रक्षणे प्रीत्या बन्धने मोचनेऽपि च ॥१०३॥
अन्यत्र सर्वकार्येषु पठनुच्चैः प्रमोदतः ।
धेनूनां दोहने काले मन्त्रमुच्चारयंस्तथा ॥१०४॥
श्रेष्ठिना तेन संपृष्टो गोपो भो ब्रूहि केन च ।
मन्त्रोऽयं प्रवरस्तुभ्यं दत्तः शर्मशतप्रदः ॥१०५॥
सुभगस्तं प्रणम्याशु तत्प्राप्तेः कारणं जगौ ।
तन्निशम्य सुधीः श्रेष्ठी तं प्रशंसितवान् भृशम् ॥१०६॥
धन्यस्त्वं पुत्र पुण्यात्मा त्वमेव गुणसागरः ।
यस्त्वया स मुनिर्दृष्टः प्राप्तो मन्त्रो जगद्धितः ॥१०७॥
उद्धृतोऽयं त्वया जीवः स्वकीयो भवसागरात् ।
त्वमेव प्रवरो लोके त्वमेव शुभसंचयः ॥१०८॥
उद्वर्तितो यथादर्शो भवत्येव सुनिर्मलः ।
तथा सन्मन्त्रयोगेन जीवो निर्मलतां व्रजेत् ॥१०९॥
इति प्रशस्य तं श्रेष्ठी सम्यग्दृष्टिः सुधार्मिकः ।
वस्त्रभोजनसद्वाक्यैस्तोषयामास गोपकम् ॥११०॥
तदाप्रभृति पूतात्मा विशेषेण स्वपुत्रवत् ।
नित्यं पालयति स्मोच्चैर्धर्मी धर्मिणि वत्सलः ॥१११॥
अथैकदागतोऽटव्यां गोमहिष्यादिवृन्दकम् ।
स लात्वा चारयंस्तत्र गङ्गातीरे मनोहरे ॥११२॥
अर्हतां प्रजपन्नाम शर्मधाम जगद्धितम् ।
सावधानस्तरोर्मूले पवित्रे परमार्थतः ॥११३॥
स्थितो यावत्सुखं तावदन्यो गोपः समागतः ।
तं जगादात्र भो मित्र महिष्यस्ते परं तटम् ॥११४॥

यान्ति शीघ्रं समागत्य ताः समानय साम्प्रतम् ।
श्रुत्वेति वचनं तस्य सुभगोऽपि प्रवेगतः ॥११५॥

गङ्गातटं सुधीर्गत्वा महासाहससंयुतः ।
मन्त्रं तमेव भव्यात्मा समुच्चार्य मनोहरम् ॥११६॥

ददौ झम्पां जले तत्र तीक्ष्णकाष्ठं दुराशयैः ।
मत्स्यबन्धिभिरारब्धं कष्टदं वर्तते पुरा ॥११७॥

तस्योपरि पपाताशु स भिन्नो जठरे तदा ।
काष्ठेन तीक्ष्णभावेन दुर्जनेनेव पापिना ॥११८॥

तत्र मन्त्रं स्मरन्नुच्चैर्निदानं मानसेऽकरोत् ।
श्रेष्ठिनोऽस्य सुपुण्यस्य मन्त्रराजप्रसादतः ॥११९॥

पुत्रो भवाम्यहं चेति दशप्राणैः परिच्युतः ।
जातो वृषभदासस्य जिनमत्याः शुभोदरे ॥१२०॥

त्वं सुदर्शननामासौ सुपुत्रः कुलदीपकः ।
चरमाङ्गधरो धीरो जैनधर्मधुरंधरः ॥१२१॥

दाता भोक्ता विचारज्ञः श्रावकाचारतत्परः ।
परमेष्ठिमहामन्त्रप्रभावात् किं न जायते ॥१२२॥

शत्रुर्मित्रायते येन सर्पो दामयते तराम् ।
सुधायते विषं शीघ्रं समुद्रः स्थलतायते ॥१२३॥

वह्निर्जलायते येन मन्त्रराजेन भूतले ।
किं वर्ण्यते प्रभावोऽस्य स्वर्गो मोक्षश्च संभवेत् ॥१२४॥

स प्रत्यक्षं त्वया दृष्टः प्रभावः परमेष्ठिनाम् ।
महामन्त्रस्य भो भव्य भुवनत्रयगोचरः ॥१२५॥

पूर्वं या भिल्लराजस्य कुरङ्गी नाम ते प्रिया ।
सा हित्वा स्वतनुं पापात् काशीदेशे स्वकर्मणा ॥१२६॥

वाणारसीपुरे जाता महिषी तृणभक्षिका ।
सा पशवी च ततो मृत्वा श्यामलाख्यस्य कस्यचित् ॥१२७॥

रजकस्य यशोमत्या गर्भे पुत्री च वत्सिनी ।
जाता तत्रार्यिकासङ्गं समासाद्य स्वशक्तितः ॥१२८॥

किंचित्पुण्यं तथोपार्ज्य संजातेयं मनोरमा ।
रूपलावण्यसंयुक्ता प्रीता ते प्राणवल्लभा ॥१२९॥

सतीमतल्लिका नित्यं दानपूजाव्रतोद्यता ।
जैनधर्मं समाराध्य जन्तुः पूज्यतमो भवेत् ॥१३०॥

इत्यादि भवसंबन्धं गुरोर्विमलवाहनात् ।
श्रुत्वा सुदर्शनः श्रेष्ठी संतुष्टो मानसे तराम् ॥१३१॥

स जयतु जिनदेवो देवदेवेन्द्रवन्द्यो
　भवजलनिधिपोतो यस्य धर्मप्रसादात् ।
कुगतिगमनमुक्तः प्राणिवर्गो विशुद्धो
　भवति सुगतिसक्तो निर्मलो भव्यमुख्यः ॥१३२॥

इति सुदर्शनचरिते पञ्चनमस्कारमाहात्म्यप्रदर्शके मुमुक्षु-
श्रीविद्यानन्दिविरचिते सुदर्शन-मनोरमा-भवावली-
वर्णनो नामाष्टमोऽधिकारः ।

नवमोऽधिकारः

अथ श्रेष्ठी विशिष्टात्मा श्रुत्वा स्वभवविस्तरम् ।
वैराग्यं सुतरां प्राप्यानुप्रेक्षाचिन्तनोद्यतः ॥१॥

संसारे भङ्गुरं सर्वं धनं धान्यादिकं किल ।
संपदा सर्वदा सर्वा चञ्चला चपला यथा ॥२॥

पुत्रमित्रकलत्रादिबान्धवाः सज्जना जनाः ।
सर्वेऽपि विषयाः कष्टं क्षयं यान्ति क्षणार्धतः ॥३॥

रूपसौभाग्यसौन्दर्ययौवनं वा करे वनम् ।
हस्त्यश्वरथभृत्यौघो मेघनद्यौघवच्चलः ॥४॥

शक्रचापसमा लक्ष्मीर्जायते पुण्ययोगतः ।
तत्क्षये सा क्षयं याति न केनापि स्थिरा भवेत् ॥५॥

चक्रित्वं वासुदेवत्वं शक्रत्वं धरणेन्द्रता ।
अशाश्वतमिदं सर्वं का कथा चाल्पजन्तुषु ॥६॥

सर्वदा पोषितः कायः सर्वो मायामयो यथा ।
शरन्मेघः प्रयात्याशु वायुना स्वायुषः क्षये ॥७॥

भोगोपभोगवस्तूनि विनाशीनि समन्ततः ।
गेहस्वर्णविभूतिर्या कालवह्नेर्विभूतिवत् ॥८॥

अन्येऽपि ये पदार्थास्ते दृष्टनष्टाः क्षणार्धतः ।
अतोऽत्र चिन्तयेद्धीमान्निर्ममत्वं स्वसिद्धये ॥९॥

इत्यध्रुवानुप्रेक्षा

भवेऽस्मिन् सर्वजन्तूनां शरणं नास्ति किंचन ।
माता पिता स्वसा भ्राता मित्रं वा मरणक्षणे ॥१०॥

स्वर्गो दुर्गः सुरा भृत्या वज्रमायुधमुत्कटम् ।
ऐरावणो गजो यस्य सोऽपि कालेन नीयते ॥११॥
निधयो नव रत्नानि चतुर्दश षडङ्गकम् ।
सैन्यं सबान्धवं सर्वं चक्रिणः शरणं न हि ॥१२॥
जन्ममृत्युजरापायं रत्नत्रयमनुत्तरम् ।
शरण्यं भव्यजीवानां संसारे नापरं क्वचित् ॥१३॥

इत्यशरणानुप्रेक्षा ।

पञ्चप्रकारसंसारे द्रव्ये क्षेत्रे च कालके ।
भवे भावे चतुर्भेदगतिगर्त्तासमन्विते ॥१४॥
अनादिकालसंलग्नकर्मभिः संवशीकृतः ।
जीवो नित्यं भ्रमत्यत्र लोहो वा चुम्बकेन च ॥१५॥
छेदनं भेदनं कष्टं शूलाद्यारोहणं चिरम् ।
मिथ्याकषायहिंसाद्यैर्नारका नरकेषु च ॥१६॥
भुञ्जन्ते क्षुत्पिपासाद्यैर्दुःखं ते पशवः खरम् ।
मायापापादिदोषेण ताडनं तापनं घनम् ॥१७॥
मनुष्येषु च दुःखौघो जायते पापकर्मणा ।
इष्टमित्रवियोगेनानिष्टसंयोगतस्तथा ॥१८॥
पापेन दुःखदारिद्र्यजन्ममृत्युजरादिजम् ।
पराधीनतया नित्यं दुःखं संजायते नृणाम् ॥१९॥
देवानां च भवेद्दुःखं मानसं परसंपदाम् ।
समालोक्य तथाचान्ते प्राप्ते मिथ्यादृशान्तरम् ॥२०॥
श्रीमज्जिनेन्द्रसद्धर्मविहीना बहवो जनाः ।
एवं संसारकान्तारे दुःखभारे भ्रमन्त्यहो ॥२१॥

उक्तं च—

एकेन पुद्गलद्रव्यं यत्तत्सर्वमनेकशः ।
उपयुज्य परित्यक्तमात्मना द्रव्यसंसृतौ ॥२२॥

लोकत्रयप्रदेशेषु समस्तेषु निरन्तरम् ।
भूयो भूयो मृत जातं जीवेन क्षेत्रसंसृतौ ॥२३॥
उत्सर्पिण्यवसर्पिण्यो. समयावलिकानताः ।
यासु मृत्वा न संजातमात्मना कालसंसृतौ ॥२४॥
नरनारकतिर्यक्षु देवेष्वपि समन्तत. ।
मृत्वा जीवेन संजातं बहुशो भवसंसृतौ ॥२५॥
असंख्येयजगन्मात्रा भावाः सर्वे निरन्तरम् ।
जीवेनादाय मुक्ताश्च बहुशो भवससृतौ ॥२६॥

इति संसारानुप्रेक्षा ।

एकः प्राणी करोत्यत्र नानाकर्म शुभाशुभ् ।
पुत्रमित्रकलत्रादेः कारणं संप्रतारणम् ॥२७॥
तत्फलं सर्वमेकाकी भुनक्ति भवसंकटे ।
श्वभ्रे वा पशुयोनौ वा नरे वात्र सुरालये ॥२८॥
अतो जीवो ममत्वं च प्रकुर्वन्मूढमानसः ।
कुटुम्बादौ न जानाति स्वात्मनस्तु हिताहितम् ॥२९॥
एको भव्यो विनीतात्मा जिनभक्तिपरायणः ।
गुरोः पादाम्बुजं नत्वा दीक्षामादाय निस्पृहः ॥३०॥
रत्नत्रयं समाराध्य तपस्तप्त्वा सुनिर्मलम् ।
शुक्लध्यानेन कर्मारीन् हत्वा याति शिवालयम् ॥३१॥

इत्येकत्वानुप्रेक्षा ।

जीवोऽयं निश्चयादन्यो देहतोऽपि निरन्तरम् ।
शरीरे मिलितश्चापि नीरक्षीरमिव ध्रुवम् ॥३२॥
का वार्त्ता भुवने पुत्रमित्रस्त्रीबान्धवादिषु ।
यत्सर्वे ते प्रवर्तन्ते बहिर्भूता विशेषतः ॥३३॥

यथा कनकपाषाणे सुवर्णं मिलितं सदा ।
तथापि स्वस्वरूपेण भिन्नमेवाधितिष्ठते ॥३४॥
जीवोऽपि सर्वदा तद्वच्छक्तितो ज्ञानदृष्टिभाक् ।
शरीरे वर्तते नित्यं स्वस्वरूपो गुणाकरः ॥३५॥
इत्यन्यत्वानुप्रेक्षा ।

कालोऽयमशुचिर्नित्यं मांसास्थिरुधिरैर्मलैः ।
बीभत्सः कृमिसंघातः प्रक्षयी क्षणमात्रतः ॥३६॥
मत्वेति पण्डितैर्धीरैः श्रीजिनश्रुतसाधुषु ।
भक्तितः सुतपोयोगैर्व्रतैर्नानाविधैः शुभैः ॥३७॥
प्रमादं मदमुत्सृत्य सावधानैर्जिनोक्तिषु ।
सत्कुलं प्राप्य कालस्य फलं ग्राह्यं सुखार्थिभिः ॥३८॥
इत्यशुच्यनुप्रेक्षा ।

मिथ्याव्रतप्रमादैश्च कषायैर्योगकैस्तथा ।
कर्मणामास्रवो जन्तोर्भग्नद्रोण्यां यथा जलम् ॥३९॥
सापि द्विधास्रवः प्रोक्तः शुभाशुभविकल्पतः ।
परिणामविशेषेण विज्ञेयो धीधनैर्जनैः ॥४०॥
इत्यास्रवानुप्रेक्षा ।

सम्यक्त्वव्रतसंयुक्तसत्क्षमाध्यानमानसैः ।
मनोमर्कटकं रुध्वा दयासंपत्तिशालिभिः ॥४१॥
संवरः क्रियते नित्यं प्रमादपरिवर्जितैः ।
कर्मणां वा महाम्भोधौ जलानां पोतरक्षकैः ॥४२॥
इति संवरानुप्रेक्षा ।

निर्जरा द्विविधा ज्ञेया सविपाकाविपाकजा ।
कर्मणामेकदेशेन हानिर्भवति योगिनाम् ॥४३॥

दत्वा दुःखादिकं जन्तोः कर्मणामुदये सति ।
हानिः क्रमेण सर्वत्र सा विपाका मता बुधैः ॥४४॥
जिनेन्द्रतपसा कर्महानिर्या क्रियते बुधैः ।
अविपाका तु सा ज्ञेया निर्जरा परमोदया ॥४५॥
इति निर्जरानुप्रेक्षा ।

विलोक्यन्ते पदार्था हि यत्र जीवादयः सदा ।
स लोको भण्यते तज्ज्ञैर्जिनेन्द्रमतवेदिभिः ॥४६॥
स केन विहितो नैव लोको रुद्रादिना ध्रुवम् ।
हर्ता नैव तथा तस्य चास्ति कालत्रये मतः ॥४७॥
अनादिनिधनो नित्यमनन्ताकाशमध्यगः ।
अधोमध्योर्ध्वभेदेन त्रिधासौ परिकीर्तितः ॥४८॥
चतुर्दशभिरुत्सेधो रज्जुभिः प्रविराजते ।
रज्जूनां त्रिशतान्येव त्रिचत्वारिंशता घनः ॥४९॥
प्रोक्तः सप्तैकपञ्चैकरज्जुभिः पूर्वपश्चिमे ।
अधोमध्योरुब्रह्मान्ते लोकान्ते क्रमतो जिनैः ॥५०॥
दक्षिणोत्तरतः सोऽपि सर्वतः सप्तरज्जुभाक् ।
वृक्षो वा छल्लिभिर्वातैस्त्रिभिर्नित्यं प्रवेष्टितः ॥५१॥
रत्नप्रभापुराभागे खरादिबहलाभिधे ।
योजनानां सहस्राणि बाहल्यं षोडशोक्तितः ॥५२॥
पङ्कादिबहले भागे द्वितीये चतुरुत्तरा ।
अशीतिस्तु सहस्राणि बाहल्यं च प्रकीर्तितम् ॥५३॥
तस्मिन् भागद्वये नित्यं भावनामरपूजिताः ।
कोटयः सप्त लक्षाश्च द्वासप्ततिरनुत्तराः ॥५४॥
प्रासादाः श्रीजिनेन्द्राणां प्रतिमाभिर्विराजिताः ।
शाश्वताः सध्वजाद्यैश्च परमानन्ददायिनः ॥५५॥

व्यन्तराणां विमानेषु तत्र संख्याविवर्जिताः ।
हेमरत्नमया सन्ति तान् वन्दे श्रीजिनालयान् ॥५६॥

योजनानां सहस्राणि त्वशीतिं परिमाणकम् ।
जलादिबहलं भागमादिं कृत्वा क्रमादधः ॥५७॥

सप्तपातालभूमीषु यत्र तिष्ठन्ति नारकाः ।
मिथ्याहिंसामृषास्तेयाब्रह्मभूरिपरिग्रहैः ॥५८॥

कष्टदुष्टकषायाद्यैः पापैः पूर्वभवार्जितैः ।
सहन्ते विविधं दुःखं छेदनैर्भेदनादिभिः ॥५९॥

ताडनैस्तापनैः शूलारोहणैः कुहनैर्घनैः ।
स्वोत्पत्तिमृत्युपर्यन्तं कविवाचामगोचरम् ॥६०॥

एकरज्जुसुविस्तीर्णो मध्यलोकोऽपि वर्णितः ।
द्विगुणद्विगुणस्फारैरसंख्यैर्द्वीपसागरैः ॥६१॥

जम्बूद्वीपे तथा धातकीद्वीपे पुष्करार्द्धके ।
मेरवः सन्ति पञ्चोच्चैः प्रोत्तुङ्गाः सुमनोहराः ॥६२॥

संबन्धीनि च मेरूणां तेषां क्षेत्राणि सन्ति वै ।
शतं वै सप्ततिश्चापि तीर्थेशां जन्मभूमयः ॥६३॥

यत्र भव्याः समाराध्य जिनधर्मं जगद्धितम् ।
स्वर्गापवर्गज सौख्यं प्राप्नुवन्ति स्वशक्तितः ॥६४॥

मेर्वादौ यत्र राजन्ते प्रासादाः श्रीजिनेशिनाम् ।
चतुःशतानि पञ्चाशदष्टौ चापि जगद्धिताः ॥६५॥

नित्यं हेममयास्तुङ्गाः शाश्वताः शर्मकारिणः ।
रत्नानां प्रतिमोपेताः पूजिता नृसुराधिपैः ॥६६॥

व्यन्तराणां विमानेषु ज्योतिष्काणां च सन्ति वै ।
जिनेन्द्रभवनान्युच्चैरसंख्यातानि नित्यशः ॥६७॥

कृत्रिमाणि तथा सन्ति जिनसद्मानि यत्र च।
तिर्यग्लोके यथा सूत्रं नृपश्वादिकसंभृते ॥६८॥

सौधर्मादिषु कल्पेषु त्रिषष्टिपटलेष्वलम् ।
लक्षाश्चतुरशीतिस्ते प्रासादाः श्रीजिनेशिनाम् ॥६९॥

सहस्राणि तथा सप्तनवतिः प्रविराजिताः ।
त्रयोविंशतिसंयुक्ता रत्नबिम्बैर्मनोहराः ॥७०॥

सर्वदेवेन्द्रदेवौघैरहमिन्द्रैः सुभक्तितः ।
पूजिता वन्दिता नित्यं शान्तये तान् भजाम्यहम् ॥७१॥

त्रैलोक्यमस्तके रम्ये प्राग्भाराख्यशिलातले ।
सिद्धक्षेत्रं सुविस्तीर्णं छत्राकारं समुज्ज्वलम् ॥७२॥

तस्योपरि मनागूनगव्यूतिप्रमितान्तरे ।
तनुवाते प्रतिष्ठन्ते सदा सिद्धा निरञ्जनाः ॥७३॥

येषां स्मरणमात्रेण रत्नत्रयपवित्रिताः ।
मुनयस्तत्पदं यान्ति ते सिद्धाः सन्तु शान्तये ॥७४॥

इत्यादिकं जगत्सर्वं षड्द्रव्यैः संभृतं सदा ।
चिन्तनीयं महाभव्यैः संवेगार्थं जिनोक्तिभिः ॥७५॥

इति लोकानुप्रेक्षा ।

बोधी रत्नत्रयप्राप्तिः संसाराम्भोधितारिणी ।
स्वर्मोक्षसाधिनी नित्यं सा बोधिः सेव्यते सदा ॥७६॥

रत्नत्रयं द्विधा प्रोक्तं व्यवहारेण निश्चयात् ।
व्यवहारेण तद्यत्र जिनोक्ते तत्त्वसंग्रहे ॥७७॥

श्रद्धानं भव्यजीवानां व्रतसंदोहभूषणम् ।
स्वर्गादिसुखदं नित्यं दुर्गतिच्छेदकारणम् ॥७८॥

निःशंकितादिभिर्युक्तमष्टाङ्गैस्तद्धि दर्शनम् ।
क्षालितं वा महारत्नं भाति भव्ये मदोज्झिते ॥७९॥

ज्ञानमष्टविधं नित्यं समाराध्यं मुमुक्षुभिः ।
केवलज्ञानदं जैनं विरोधपरिवर्जितम् ॥८०॥

चारित्रं च द्विधा ज्ञेयं मुनिश्रावकभेदभाक् ।
आद्यं त्रयोदशो भेद्यं परं चैकादशप्रभम् ॥८१॥

निश्चयेन निजात्मा च शुद्धो बुद्धो यथा शिवः ।
सेव्यते यन्महाभव्यैर्दुराग्रहविवर्जितैः ॥८२॥

रत्नत्रयं भावशुद्धं परमानन्दकारणम् ।
इत्यादि बोधिराराध्या सतां सारविभूषणम् ॥८३॥

इति बोधिप्रेक्षा ।

संसारसागरे जीवान् पततः पापकर्मणा ।
यः समुद्धृत्य संधत्ते पदे स्वर्गापवर्गजे ॥८४॥

स धर्मो जिननाथोक्तो दशलाक्षणिको मतः ।
रत्नत्रयात्मकश्चापि दयालक्षणसंज्ञकः ॥८५॥

संसारे सरतां नित्यं जन्तूनां कर्मशत्रुभिः ।
दुर्लभं तं समासाद्य यत्नं कुर्वन्तु धीधनाः ॥८६॥

सोऽपि धर्मो द्विधा प्रोक्तो मुनिश्रावकगोचरः ।
आद्यो दशविधो धर्मो दानपूजाव्रतैः परः ॥८७॥

धर्मेण विपुला लक्ष्मीर्धर्मेण विमलं यशः ।
धर्मेण स्वर्गसत्सौख्यं धर्मेण परमं पदम् ॥८८॥

इत्यादि धर्मसद्भावं मत्वा भव्यैः सुखार्थिभिः ।
श्रीमज्जिनेन्द्रसद्धर्मो नित्यं संसेव्यते मुदा ॥८९॥

इति धर्मानुप्रेक्षा ।

एवं सुदर्शनो धीमान् महाभव्यशिरोमणिः ।
अनुप्रेक्षास्तरां ध्यात्वा दीक्षां लातुं समुद्यतः ॥९०॥

इत्युच्चैर्जिनधर्मकर्मचतुरः श्रेष्ठी निजे मानसे
संध्यात्वा शुभभावनां गुणनिधिर्वैराग्यरत्नाकरः।
क्षात्त्वा सर्वजनान् क्षमापरिकरो भूत्वा स्वयं भक्तितो
नत्वा तं विमलादिवाहनगुरुं दीक्षार्थमुद्युक्तवान् ॥९१॥

इति सुदर्शनचरिते पञ्चनमस्कारमाहात्म्यप्रदर्शके मुमुक्षु-
श्रीविद्यानन्दिविरचिते द्वादशानुप्रेक्षाव्यावर्णनो
नाम नवमोऽधिकारः ॥

दशमोऽधिकारः

अथ श्रेष्ठी विशुद्धात्मा भूत्वा निःशल्यमानसः ।
दत्वा सुकान्तपुत्राय सर्वं श्रेष्ठिपदादिकम् ॥१॥

भक्तितस्तं गुरुं नत्वा सुधांविमलवाहनम् ।
जगौ भो करुणासिन्धो देहि दीक्षां जिनोदिताम् ॥२॥

श्रीमत्पादप्रसादेन करोमि हितमात्मनः ।
मुनीन्द्रः सोऽपि संज्ञानी मत्वा तन्निश्चयं दृढम् ॥३॥

मुनीनां सारमाचारविधिं प्रोक्त्वा सुयुक्तितः ।
तं तरां सुस्थिरीकृत्य यथाभीष्टं जगाद च ॥४॥

तदा सुदर्शनो भव्यस्तदादेशरसायनम् ।
संप्राप्य परमानन्ददायकं तं प्रणम्य च ॥५॥

बाह्याभ्यन्तरकं सङ्गं परित्यज्य त्रिशुद्धितः ।
कृत्वा लोचं व्रतोपेतां जैनीं दीक्षां समाददे ॥६॥

सत्यं सन्त प्रकुर्वन्ति संप्राप्यावसरं शुभम् ।
श्रेयो निजात्मनो गाढं यथा श्रीमान् सुदर्शनः ॥७॥

तदा तत्सर्वमालोक्य धात्रीवाहनभूपतिः ।
पुनः स्वयोषितः कष्टं कर्म सर्वं विनिन्द्य च ॥८॥

चिन्तयामास भव्यात्मा स्वचित्ते भीतमानसः ।
अहो सुदर्शनश्चायं जिनभक्तिपरायणः ॥९॥

लघुत्वेऽपि सुधीः शीलसागरः करुणानिधिः ।
इदानीं च परित्यज्य सर्वं जातो मुनीश्वरः ॥१०॥

अहं च विषयासक्तो नारीरक्तोऽतिमूढधीः ।
न जानामि हितं किंचिद्यथा धत्तूरिको जनः ॥११॥

अधुनापि निजं कार्यं कुर्वेऽहं सर्वथा ध्रुवम् ।
कथं संसारकान्तारे दुःखी तिष्ठामि भीषणे ॥१२॥

इत्यादिकं समालोच्य राज्यं दत्वा सुताय च ।
सुकान्तं श्रेष्ठिनः पुत्रं धृत्वा श्रेष्ठिपदे मुदा ॥१३॥

कृत्वा स्नपनसत्पूजां जिनानां शर्मदायिनीम् ।
दत्वा दानं यथायोग्यं सर्वान् संतोष्य युक्तितः ॥१४॥

सेवकैर्बहुभिः सार्धं क्षत्रियैः सत्त्वशालिभिः ।
तमेव गुरुमानम्य मुनिर्जातो विचक्षणः ॥१५॥

सत्यं ये भुवने भव्या जिनधर्मविचक्षणाः ।
ते नित्यं साधयन्त्यत्र सुधियः स्वात्मनो हितम् ॥१६॥

अन्तःपुरं तदा तस्य त्यक्तसर्वपरिग्रहम् ।
वस्त्रमात्रं समादाय स्वीचक्रे स्वोचितं तपः ॥१७॥

तथान्ये बहवो भव्या जैनधर्मे सुतत्पराः ।
श्रावकाणां व्रतान्युच्चैर्गृह्णन्तिस्म विशेषतः ॥१८॥

केचिच्च सुधियस्तत्र भवभ्रमणनाशनम् ।
शुद्धसम्यक्त्वसद्रत्नं संप्रापुः परमादरात् ॥१९॥

पारणादिवसे तत्र चम्पायां मुनिसत्तमाः ।
मुक्त्वा मानादिकं कष्टं जैनीदीक्षाविचक्षणाः ॥२०॥

मत्वा जैनेश्वरं मार्गं निर्ग्रन्थ्यं स्वात्मसिद्धये ।
ईर्यापथमहाशुद्ध्या भिक्षार्थं ते विनिर्ययुः ॥२१॥

तत्रासौ सन्मुनिः स्वामी सुदर्शनसमाह्वयः ।
मत्वा चित्ते जिनेन्द्रोक्तं मुनेर्मार्गं शिवप्रदम् ॥२२॥

मानाहंकारनिर्मुक्तो भिक्षार्थं निर्गतस्तदा ।
महानपि पुरीमध्ये स्वरूपजितमन्मथः ॥२३॥
दयावल्लीसमायुक्तो जंगमो वा सुरद्रुमः ।
ईर्यापथं सुधीः पश्यन् निःस्पृहो मानसे तराम् ॥२४॥

लघून्नतगृहानुच्चैः समभावेन भावयन् ।
तदा तद्रूपमालोक्य समस्ताः पुरयोषितः ॥२५॥

महाप्रेमरसैः पूर्णाः सरितो वा सरित्पतिम् ।
तं द्रष्टुं परमानन्दात्समन्तान्मिलिता द्रुतम् ॥२६॥

कामेन विह्वलीभूताः प्रस्खलन्त्यः पदे पदे ।
गृहकार्यं परित्यज्य तद्दर्शनसमुत्सुकाः ॥२७॥

काश्चिद्रूपमहो रूपं वदन्त्यश्च परस्परम् ।
धावमानाः प्रमोदेन भ्रमर्यो वाम्बुजोत्करम् ॥२८॥

काचिदूचे तदा नारी सखीं प्रति शृणु प्रिये ।
धन्या मनोरमा नारी ययासौ सेवितो मुदा ॥२९॥

काचित्प्राह सुधीः सोऽयं सुदर्शनसमाह्वयः ।
राजश्रेष्ठी जगन्मान्यः श्रियालिङ्गितविग्रहः ॥३०॥

वञ्चिता येन सा विप्रा प्रोन्मत्ता कपिलप्रिया ।
येन त्यक्ता महीभर्तुर्भामिनीकामकातरा ॥३१॥

सोऽयं स्वामी समादाय जैनीं दीक्षां शिवप्रदाम् ।
जातो महामुनिर्धीमान् पवित्रः शीलसागरः ॥३२॥

काचित्प्राह महाश्चर्यं येन पुत्रान्विता प्रिया ।
मनोरमा महारूपवती त्यक्ता महाधिया ॥३३॥

काचिज्जगौ जिनेन्द्राणां धर्मकर्मणि तत्परा ।
शृणु त्वं भो सखि व्यक्तं मद्वचः स्थिरमानसा ॥३४॥

येऽत्र क्रोधनरागान्धा भोगलालसमानसाः ।
तपोरत्नं जिनेन्द्रोक्तं कथं गृह्णन्ति दुर्दशाः ॥३५॥

अयं जैनमते दक्षः परित्यज्य स्वसंपदाम् ।
मोक्षार्थी कुरुते घोरं तपः कातरदुःसहम् ॥३६॥

काचिदूचे सखीं मुग्धे त्वं कटाक्षनिरीक्षणम् ।
वृथा किं कुरुषे चायं मुक्तिरामानुरञ्जितः ॥३७॥

धन्यास्य जननी लोके ययासौ जनितो मुनिः ।
मुक्तिगामी दयासिन्धुः पवित्रीकृतभूतलः ॥३८॥
काचित्प्राह पुरे चास्मिन् स धन्यो भव्यसत्तमः ।
आहारार्थं क्रियापात्रं यद्गृहं यास्यतीत्ययम् ॥३९॥
इत्यादिकं महाश्चर्यं संप्राप्ता निजमानसे ।
ब्रुवन्ति स्म यदा नार्यः परमानन्दनिर्भराः ॥४०॥
तदा तत्र पुरे कश्चिन्महापुण्योदयेन च ।
तं विलोक्य मुनिं तुष्टो निधानं वा गृहागतम् ॥४१॥
श्रावकाचारपूतात्मा प्रणिपत्य मुहुर्मुहुः ।
नमोऽस्तु भो मुने स्वामिंस्तिष्ठ तिष्ठेति संब्रुवन् ॥४२॥
प्राशुकं जलमादाय कृत्वा तत्पादधावनम् ।
इत्थं सुनवभिः पुण्यैर्दातृसप्तगुणैर्युतः ॥४३ ।
तस्मै दानं सुपात्राय ददावाहारमुत्तमम् ।
स्वर्गमोक्षसुखोत्तुङ्गफलपादपसिञ्चनम् ॥४४॥
सर्वेऽपि मुनयस्तद्वत्पारणां चक्रुरुत्तमाः ।
समागत्य निजं स्थानं स्वक्रियासु स्थिताः सुखम् ॥४५॥
अतः सुदर्शनो धीमान् शुद्धश्रद्धानपूर्वकम् ।
गुरोः पार्श्वे जिनेन्द्रोक्तं सर्वशास्त्रमहार्णवम् ॥४६॥
स्वगुरोर्भक्तितो नित्यं ग्रन्थतश्चार्थतो मुदा ।
सुधीः संतरति स्मोच्चैर्गुरुभक्तिः फलप्रदा ॥४७॥
ये भव्यास्तां गुरोर्भक्तिं कुर्वते शर्मदायिनीम् ।
त्रिशुध्यति महाभव्या लभन्ते परमं सुखम् ॥४८॥
ततोऽसौ सर्वशास्त्रज्ञो भूत्वा तत्त्वविदांवरः ।
सर्वसत्त्वेषु सर्वत्र सदयां प्रतिपालयन् ॥४९॥
त्रसस्थावरकेपूच्चैर्मनोवाक्काययोगतः ।
या सर्वज्ञैः समादिष्टा धर्मद्रोर्मूलकारणम् ॥५०॥

सत्यं हितं मितं वाक्यं विरोधपरिवर्जितम् ।
नित्यं जिनागमे प्रोक्तं भजति स्म त्रिधा सुधीः ॥५१॥

तच्च जीवदयाहेतुः कथितो जैनतात्त्विकैः ।
येन लोकेऽत्र सत्कीर्तिः सुलक्ष्मीः सद्यशो भवेत् ॥५२॥

अदत्तविरतिं स्वामी सर्वथा प्रत्यपालयत् ।
यो गृह्णाति परद्रव्यं तस्य जीवदया कुतः ॥५३॥

ब्रह्मचर्यं जगत्पूज्यं सर्वपापक्षयंकरम् ।
सभेदैर्नवभिर्नित्यं सावधानतया दधे ॥५४॥

त्यक्तस्त्रीषण्ढपश्वादिकुसङ्गो दृढमानसः ।
निर्जने सुवनादौ च विरागी सोऽवसत्सुखम् ॥५५॥

सर्वेषां मण्डनं तद्धि यतीनां च विशेषतः ।
आजन्म मोक्षपर्यन्तं स दध्रे तज्जगद्धितम् ॥५६॥

यथा रूपे शुभा नासा बले राजा जवो हरौ ।
धर्मे जीवदया चित्ते दानं शीलं व्रते तथा ॥५७॥

शीलं जीवदयामूलं पापदावानले जलम् ।
शीलं तदुच्यते सद्भिर्यच्च स्वव्रतरक्षणम् ॥५८॥

एवं मत्वा स पूतात्मा शीलं सुगतिसाधनम् ।
पालयामास यत्नेन सावधानो मुनीश्वरः ॥५९॥

क्षेत्रं वास्तु धनं धान्यं द्विपदं च चतुष्पदम् ।
यानं शय्यासनं कुप्यं भाण्डं चेति बहिर्दश ॥६०॥
अत्यजत्पूर्वतः स्वामी मनोवाक्काययोगतः ।
शरीरे निस्पृहश्चापि कथं सङ्गरतो भवेत् ॥६१॥

विरुद्धं यज्जिनेन्द्रोक्तेस्तन्मिथ्यात्वं च पञ्चधा ।
स्वामी सम्यक्त्वरक्षार्थं वान्तिवद्दूरतोऽत्यजत् ॥६२॥

स्त्रीपुन्नपुंसकं चेति वेदत्रयमथोत्कटम् ।
तद्वत्संगमपि त्यक्त्वा तदुच्चैर्निरवासयत् ॥६३॥

हास्यं रत्यरती शोकं भयं सप्तविधं त्रिधा ।
त्यजति स्म जुगुप्सां च मुनिर्ज्ञानबलेन सः ॥६४॥

उक्तं च—

इह परलोयत्ताणा अगुत्तिभय मरण वेयणक्कस्सम् ।
सत्तविहं भयमेय णिद्दिट्ठं जिणवरिंदेण ॥६५॥

क्षमासलिलधाराभिः पुण्यसाराभिरादरम् ।
चतुःकषायदावाग्निं स्वामी शमयति स्म सः ॥६६॥

एषो मे बान्धवो मित्रमेषो मे शत्रुकः कुधीः ।
इति भावं परित्यज्य स्वतत्त्वे समधीः स्थितः ॥६७॥

चतुर्दशविधं चेति परिग्रहमहाग्रहम् ।
अभ्यन्तरं हि दुस्त्याज्यं त्यजति स्म महामुनिः ॥६८॥

तेषां पञ्चव्रतानां च भावनाः पञ्चविंशतिः ।
पञ्चपञ्चप्रकारेण मातरो वा हितंकराः ॥६९॥

मनोगुप्तिवचोगुप्तीर्यादानक्षेपणं तथा ।
संविलोक्यान्नपानं च प्रथमव्रतभावनाः ॥७०॥

क्रोधलोभत्वभीरुत्वहास्यवर्जनमुत्तमम् ।
अनुवीचीभाषणं च पञ्चैताः सत्यभावनाः ॥७१॥

आचौर्यभावनाः पञ्चशून्यागारविमोचिता ।
वासवर्जनमन्येषामुपरोधविवर्जनम् ॥७२॥

भैक्ष्यशुद्धिस्तथा नित्यं सधर्मणि जने तराम् ।
विसंवादपरित्यागो भाषिता मुनिपुङ्गवैः ॥७३॥

स्त्रीणां रागकथा कर्णे तद्रूपप्रविलोकने ।
पूर्वरत्याः स्मृतौ पुष्टाहारे वाञ्छाविवर्जनम् ॥७४॥

त्यागः शरीरसंस्कारे चतुर्थव्रतभावनाः ।
पञ्चैता मुनिभिः प्रोक्ताः शीलरक्षणहेतवः ॥७५॥

इष्टानिष्टेन्द्रियोत्पन्नविषयेषु सदा मुनेः ।
रागद्वेषपरित्यागाः पञ्चमव्रतभावनाः ॥७६॥

इत्येवं भावनाः स्वामी पञ्चविंशतिमुत्तमाः ।
तेषां पञ्चव्रतानां च पालयामास नित्यशः ॥७७॥

तथा दयापरो धीरः सदेर्यापथशोधनम् ।
करोति स्म प्रयत्नेन निधान वा विलोकयते ॥७८॥

यद्विना न दयालक्ष्मीर्भवेन्मुक्तिप्रसाधिनी ।
यथा रूपयुता नारी शीलहीना न शाभते ॥७९॥

जिनागमानुसारेण ब्रुवन् स्वामी वचोऽमृतम् ।
भाषादिसमितिं नित्यं भजति स्म प्रशर्मदाम् ॥८०॥

श्रावकैर्युक्तितो दत्तमन्नपानादिकं शुभम् ।
संविलोक्य मुनिश्चैकवारं संतोषपूर्वकम् ॥८१॥

तपोवृद्धिनिमित्तं च मध्ये मध्ये तपश्चरन् ।
एषणासमितिं नित्यं संबभार मुनीश्वरः ।८२॥

आदाने ग्रहणे तस्य प्रायो नास्ति प्रयोजनम् ।
सर्वव्यापारनिर्मुक्तेर्निस्पृहत्वं विशेषतः ॥८३॥

तथापि पुस्तकं कुण्डीं कदाचित् किंचिदुत्तमम् ।
मृदुपिच्छकलापेन स्पृष्ट्वा गृह्णाति संयमी ॥८४॥

क्वचिन्मलादिकं किंचित्प्रासुकस्थानके त्यजन् ।
प्रतिष्ठापनिकां युक्त्या समितिं स सुधीः श्रितः ॥८५॥

इत्येवं पञ्चसमितीर्दयाद्रुमघनावलीः ।
पालयामास योगीन्द्रः सावधानो जिनोदिते ॥८६॥

स्पर्शनं चाष्टधा नित्यं स्निग्धकोमलकं सुधीः ।
परित्यज्य पवित्रात्मा तदिन्द्रियजयोद्यतः ॥८७॥

जिह्वेन्द्रियं त्रिधा स्वामी स्वेच्छाहारादिवर्जनात् ।
जयति स्म सदा शूरः कातरत्वविवर्जितः ॥८८॥

इन्द्रियाणां जयी शूरो न शूरः सङ्गरे मरन् ।
अक्षशूरस्तु मोक्षार्थी रणे शूरः खलंपटः ॥८९॥

चन्दनागुरुकर्पूरसुगन्धद्रव्यसंचये ।
वाञ्छामपि त्यजन् स्वामी तदिन्द्रियजयेऽभवत् ॥९०॥

चतुरिन्द्रियमत्यन्तविरक्तः स्त्रीविलोकने ।
सुधीर्निर्जितवाञ्श्रित्यं सर्ववस्तुस्वरूपवित् ॥९१॥

श्रोत्रेन्द्रियं सरागादिगीतवार्तामपि ध्रुवम् ।
परित्यज्य जिनेन्द्रोक्तौ प्रीतितः श्रवणं ददौ ॥९२॥

इति प्रपञ्चतः स्वामी स्वपञ्चेन्द्रियवञ्चकान् ।
वञ्चयामास चातुर्याच्चतुरः केन वञ्च्यते ॥९३॥

मस्तके लुञ्चनं चक्रे मुनीन्द्रः प्रार्थनोज्झितम् ।
परीषहजयार्थं च परमार्थविदांवरः ॥९४॥

त्रिसन्ध्यं श्रीजिनेन्द्राणां वन्दनाभक्तितत्परः ।
समताभावमाश्रित्य सामायिकमनुत्तरम् ॥९५॥

करोति स्म सदा दक्षस्तद्दोषौघैर्विवर्जितम् ।
चैत्यपञ्चगुरूणां च भक्तिपाठक्रमादिभिः ॥९६॥

चतुर्विंशतितीर्थेशां संतनोति स्म संस्तुतिम् ।
सर्वपापापहां नित्यं महाभ्युदयदायिनीम् ॥९७॥

वन्दनामेकतीर्थेशो ज्ञानादिगुणगोचराम् ।
तद्गुणप्राप्तये नित्यं चक्रेऽसौ चतुरोत्तमः ॥९८॥

प्रतिक्रमणमत्युच्चैः कृतदोषक्षयंकरम् ।
करोति स्म परित्यज्य प्रमादं सर्वदा सुधीः ॥९९॥

वलनानन्तरं नित्यं प्रत्याख्यानं सुखाकरम् ।
देवगुर्वादिसाक्षं च गृह्णाति स्म विचक्षणः ॥१००॥

अन्यो यस्तु परित्यागो यस्य कस्यापि वस्तुनः ।
स्वशक्त्या क्रियते धीरैः प्रत्याख्यानं च कथ्यते ॥१०१॥

कायोत्सर्गं सदा स्वामी करोति स्म स्वशक्तितः ।
कायेऽति निस्पृहो भूत्वा कर्मणां हानये बुधः ॥१०२॥

षडावश्यकमित्यत्र मुनीनां शर्मराशिदम् ।
आवासं वा शिवप्राप्त्यै साधयामास योगिराट् ॥१०३॥

कौशेयकं च कार्पासं रोमजं चर्मजं तथा ।
वाल्कलं च पटं नित्यं पञ्चधा त्यजति स्म सः ॥१०४॥

जातरूपं जिनेन्द्राणां परं निर्वाणसाधनम् ।
रक्षणं ब्रह्मचर्यस्य मत्वा नग्नत्वमाश्रितः ॥१०५॥

अस्नानं संविधत्ते स्म दयालू रागहानये ।
क्षितौ शयनमत्युच्चैः स भेजे धृतिकारणम् ॥१०६॥

दन्तानां धावनं नैव करोति स्म महामुनिः ।
प्रत्याख्यानप्ररक्षार्थं मुनिमार्गस्य तत्त्ववित् ॥१०७॥

भुक्तिपानप्रवृत्तेश्च मर्यादाप्रतिपालकम् ।
ऊर्ध्वीभूय यथायोग्यमेकवारं स्वयुक्तितः ॥१०८॥

संतोषभावमाश्रित्य श्रावकाणां ग्रहे शुभम् ।
आहारं स्वतपःसिद्ध्यै करोति स्म महामुनिः ॥१०९॥

कृतकारितनिर्मुक्तं पवित्रं दोषवर्जितम् ।
अन्तरं पादयोः कृत्वा चतुरङ्गुलमात्रकम् ॥११०॥

सूर्योदये घटीषट्कमपराह्णे तथा त्यजन् ।
तन्मध्ये प्राशुकाहारं स लाति स्म मुनिः शुभम् ॥१११॥

एतान् मूलगुणानुच्चैर्मुनीनां मोक्षसाधकान् ।
दध्रेऽष्टाविंशतिं शुद्धान् धर्मध्यानपरायणः ॥११२॥

तथा श्रीमज्जिनेन्द्रोक्तं दशधा धर्ममुत्तमम् ।
उत्तमक्षान्तिसन्मुख्यं स प्रीत्या प्रत्यपालयत् ॥११३॥

गुप्तित्रयपवित्रात्मा सर्वशीलप्रभेदभाक् ।
द्वाविंशतिप्रमाणोक्तपरीषहसहिष्णुकः ॥११४॥

कर्मणां निर्जराहेतुं मत्वा चित्ते समग्रधीः ।
उपवासतपश्चक्रे तपसां मुख्यमुत्तमम् ॥११५॥

यथाष्टाङ्गशरीरेषु मस्तकं मुख्यकारणम् ।
तथा द्वादशभेदानां तपसां स्यादुपोसनम् ॥११६॥

आमोदर्यं तपः स्वामी प्रमादपरिहानये ।
स्वाध्यायसिद्धये चक्रे कर्मचक्रनिवारणम् ॥११७॥

वृत्तिसंख्यानकं नाम तपः संतोषकारणम् ।
वस्तुगेहवनोद्वृक्षसंख्यानैः कुरुते स्म सः ॥११८॥

जिनवाक्यामृतास्वादविशदीकृतमानसः ।
रसत्यागतपोधीरः स तेपे परमार्थवित् ॥११९॥

विविक्तशयनं नित्यं विविक्तं चासनं क्षितौ ।
भजति स्म सुधीः शीलदयापालनहेतवे ॥१२०॥

त्रिकालयोगसंयुक्त्या कायक्लेशतपोऽभवत् ।
तस्य तत्त्वप्रयुक्तस्य रतिनाथप्रवैरिणः ॥१२१॥

इत्येवं षड्विधं बाह्यमभ्यन्तरविशुद्धये ।
तपः संतप्तवान् गाढं कातराणां सुदुःसहम् ॥१२२॥

तस्य शुद्धचरित्रस्य कदाचिच्चेत्प्रमादता ।
प्रायश्चित्तं यथाशास्त्रं तपोऽभूच्छल्यनाशकम् ॥१२३॥

विनयं भक्तितश्चक्रे सर्वदा धर्मवत्सलः ।
रत्नत्रयपवित्राणां मुनीनां परमार्थतः ॥१२४॥

रत्नत्रये पराशुद्धिर्विनयादस्य चाभवत् ।
विद्या विनयतः सर्वाः स्फुरन्ति स्म विशेषतः ॥१२५॥

सत्यं पद्माकरे नित्यं भानुरेव विकाशकृत् ।
ततः साधर्मिकेषूच्चैर्विधेयो विनयो बुधैः ॥१२६॥

आचार्यपाठकादीनां दशधा सत्तपस्विनाम् ।
वैयावृत्त्यं स्वहस्तेन करोति स्म स संयमी ॥१२७॥

तथा यच्च सुपात्रेभ्यो दीयते भव्यदेहिभिः ।
आहारौषधशास्त्रादि वैयावृत्यं तदुच्यते ॥१२८॥

वैयावृत्यविहीनस्य गुणाः सर्वे प्रयान्त्यलम् ।
सत्यं शुष्कतडागेऽत्र हंसास्तिष्ठन्ति नैव च ॥१२९॥

स्वाध्यायं पञ्चधा नित्यं प्रमादपरिवर्जितः ।
वाचना प्रच्छनानुप्रेक्षाम्नायैर्धर्मदेशनैः ॥१३०॥

जिनोक्तसारशास्त्रेषु परमानन्दनिर्भरः ।
कर्मणां निर्जराहेतुं मत्वासौ संचकार च ॥१३१॥

स्वाध्यायेन शुभा लक्ष्मीः संभवेद्विमलं यशः ।
तत्त्वज्ञानं स्फुरत्युच्चैः केवलं च भवेदलम् ॥१३२॥

उक्तं च—

ज्ञानस्वभावः स्यादात्मा स्वस्वभावाप्तिरच्युतिः ।
तस्मादच्युतिमाकाङ्क्षन् भावयेद् ज्ञानभावनाम् ॥१३३॥

स संवेगपरो भूत्वा मुनीन्द्रो मेरुनिश्चलः ।
प्रदेशे निर्जने कायोत्सर्गं विधिवदाश्रयत् ॥१३४॥

निर्ममत्वमलं चित्ते संध्यायन् सर्ववस्तुषु ।
एकोऽहं शुद्धचैतन्यो नापरो मेऽत्र कश्चन ॥१३५॥

इति भावनया तस्य कर्मणां निर्जराभवत् ।
सुतरां भास्करोद्योते सत्यं याति तमश्चयः ॥१३६॥

इष्टप्राप्तिस्मृते चित्ते त्वनिष्टक्षयचिन्तनात् ।
वेदनाया निदानाच्च भवेदार्तं चतुर्विधम् ॥१३७॥

ध्यानं पश्वादिदुःखस्य कारणं धर्मवारणम् ।
चतुःपञ्चोरुषष्ठाख्यगुणस्थानावधि ध्रुवम् ॥१३८॥

हिंसानृतोद्भवं स्तेयविषयारक्षणोद्भवम् ।
आपञ्चमगुणस्थानं नरकादिक्षितिप्रदम् ॥१३९॥

रौद्रमेतद्द्वयं स्वामी दुर्गतेः कारणं ध्रुवम् ।
परित्यज्य दयासिन्धुः सर्वद्वन्द्वविवर्जितः ॥१४०॥

आज्ञापायविपाकोत्थं संस्थानविचयं तथा ।
धर्मध्यानं चतुर्भेदं स्वर्गादिसुखसाधनम् ॥१४१॥

ध्यायन्नित्यं स मोक्षार्थी षड्विधं चेति सत्तपः ।
आभ्यन्तरं जगत्सारं करोति स्म सुखप्रदम् ॥१४२॥

शुक्लध्यानं चतुर्भेदं साक्षान्मोक्षस्य कारणम् ।
तदग्रे कथयिष्यामि भवभ्रमणवारणम् ॥१४३॥

एवं तपस्यतस्तस्य संजाता विविधर्द्धयः ।
अनेकभव्यलोकानां परमानन्ददायिकाः ॥१४४॥

तथा चोक्तम्—

बुद्धि तओ वि य लद्धी विउवण लद्धी तहेव ओसहिया ।
मणवचिअरकीणा वि य लद्धीओ सत्त पण्णत्ता ॥१४५॥

ग्रीष्मकाले महाधीरः पर्वतस्योपरि स्थितः ।
शीतकाले बहिर्देशे प्रावृट्काले तरोरधः ॥१४६॥

कुर्वन्महातपः स्वामी ध्यानी मौनी मुनीश्वरः ।
शैथिल्यं कर्मणां शक्तिं नयति स्म महामनाः ॥१४७॥

इत्येवं स मुनीश्वरो गुणनिधिर्मूलोत्तरान् सद्गुणान्
संसाराम्बुधितारणैकनिपुणान् स्वर्गापवर्गप्रदान् ।
सद्रत्नत्रयमण्डितोऽतिनितरां वृद्धिं नयन्नित्यशो
निर्मोहः परमार्थपण्डितनुतश्चक्रे जिनोक्तं तपः ॥१४८॥

॥ इति सुदर्शनचरिते पञ्चनमस्कारमाहात्म्यप्रदर्शके मुमुक्षु-
श्रीविद्यानन्दिविरचिते सुदर्शनतपोग्रहणमूलो-
त्तरगुणप्रतिपालनव्यावर्णनो नाम
दशमोऽधिकारः ॥

एकादशोऽधिकारः

अथासौ सन्मुनिः स्वामी जैनतत्त्वविदांवरः ।
धर्मोपदेशपीयूषैर्भव्यजीवान् प्रतर्पयन् ॥१॥

श्रीमज्जिनेन्द्रचन्द्रोक्तधर्मं संवर्द्धयन् सुधीः ।
नानातीर्थविहारेण प्रतिष्ठाद्युपदेशनैः ॥२॥

अनेकव्रतशीलाद्यैर्दानपूजागुणोत्करैः ।
मार्गप्रभावनां नित्यं कारयन् परमोदयः ॥३॥

स्वयं कर्मक्षयार्थी च पञ्चकल्याणभूमिषु ।
जिनानामूर्जयन्तादिसिद्धक्षेत्रेषु सर्वतः ॥४॥

वन्दनाभक्तिमातन्वन् विहारं मुनिमार्गतः ।
कुर्वन् विशुद्धचित्तः सन् सर्वजीवदयापरः ॥५॥

पारणादिवसे स्वामी पाटलीपुत्रपत्तनम् ।
ईर्यापथं सुधीः पश्यंश्चर्यार्थं स समागमत् ॥६॥

तदा तत्पत्तने पापा पण्डिता धात्रिका स्थिता ।
आगतं तं समाकर्ण्य मुनीन्द्रं जितमन्मथम् ॥७॥

देवदत्तां प्रति प्राह शृणु त्वं रे मदीरितम् ।
सोऽयं सुदर्शनो नूनं मुनिर्भूत्वा समागतः ॥८॥

निजां प्रतिज्ञां सा स्मृत्वा वेश्यामायाशतान्विता ।
श्राविकारूपमादाय महाकपटकारिणी ॥९॥

नत्वा तं स्थापयामास गतविक्रियमादरात् ।
रुद्धाशयं गृहस्यान्तं नयति स्म दुराशया ॥१०॥

भूपतेर्भामिनी यत्र लोके कन्दर्पपीडिता ।
दुराचारशतं चक्रे वेश्यायाः किं तदुच्यते ॥११॥

तत्र सा मदनोन्मत्ता तं जगाद मुनीश्वरम् ।
भो मुने तव सद्रूपं यौवनं चित्तरञ्जनम् ॥१२॥
एतैर्भोगैर्मनोऽभीष्टैः सफलीकुरु साम्प्रतम् ।
बहुद्रव्यं गृहे मेऽस्ति नानाजनसमागतम् ॥१३॥
चिन्तामणिरिवाक्षय्यं कल्पद्रुमवदुत्तमम् ।
सर्वं गृहाण दासीत्वं करिष्यामि तवेप्सितम् ॥१४॥
मन्दिरे मेऽत्र सर्वत्र सर्ववस्तुमनोहरे ।
मम सङ्गेन ते स्वर्गः सुधीरत्र समागतः ॥१५॥
किं ते तपःप्रकष्टेन सदाप्राणप्रहारिणा ।
भुक्त्वा भोगान् मया सार्धं सर्वथा त्वं सुखी भव ॥१६॥
ततस्तां स मुनिः प्राह धीरवीरैकमानसः ।
रे रे मुग्धे न जानासि त्वं पापात् संसृतेः स्थितिम् ॥१७॥
शरीरं सर्वथा सर्वजनानामशुचेर्गृहम् ।
जलबुद्बुदवद्बाढं क्षयं याति क्षणार्धतः ॥१८॥
भोगाः फणीन्द्रभोगाभाः सद्यः प्राणप्रहारिणः ।
संपदा विपदा तुल्या चञ्चलेवातिचञ्चला ॥१९॥
शीलरत्नं परित्यज्य शर्मकोटिविधायकम् ।
येऽधमाश्चात्र कुर्वन्ति दुराचारं दुराशयाः ॥२०॥
ते मूढा विषयासक्ताः श्वभ्रं यान्ति स्वपापतः ।
तत्र दुःखं प्रयान्त्येव छेदनं भेदनादिकम् ॥२१॥
जन्मादिमृत्युपर्यन्तं कविवाचामगोचरम् ।
तस्मात् सुदुर्लभं प्राप्य मानुष्यं क्रियते शुभम् ॥२२॥
इत्यादिकं प्रजल्प्योच्चैस्तस्याः स मुनिपुङ्गवः ।
द्विधा संन्यासमादाय मेरुवन्निश्चलाशयः ॥२३॥
चित्ते संचिन्तयामास स्वामी वैराग्यवृद्धये ।
अमेध्यमन्दिरं योषिच्छरीरं पापकारणम् ॥२४॥

बहिर्लावण्यसंयुक्तं किंपाकफलवत् खरम् ।
कामिनां पतनागारं निःसारं संकटोत्करम् ॥२५॥
दुष्टस्त्रियो जगत्यत्र सद्यः प्राणप्रहाः किल ।
सर्पिण्यो वात्र मूढानां वञ्चनाकरणे चणाः ॥२६॥
पातिन्यः श्वभ्रगर्त्तायां स्वयं पतनतत्पराः ।
प्रमुग्धमृगसार्थानां वागुराः प्राणनाशकाः ॥२७॥
कामान्धास्तत्र कुर्वन्ति वृथा प्रीतिं प्रमादिनः ।
स्वतत्त्वं नैव जानन्ति यथा धात्तूरिकाः खलाः ॥२८॥
ते धन्या भुवने भव्या ते स्त्रीसंगपराङ्मुखाः ।
परिपाल्य व्रतं शीलं संप्रापुः परमोदयम् ॥२९॥
मयापि श्रीजिनेन्द्रोक्ते तत्त्वे चित्तं विधाय च ।
मोक्षसौख्यं परं साध्यं सर्वथा शीलरक्षणात् ॥३०॥
एवं यदा मुनिर्धीरः स्वचित्ते चिन्तयत्यलम् ।
तावत्तया समुद्धृत्य पापिन्या मुनिसत्तमम् ॥३१॥
स्वशय्यायां चकाराशु स तदापि मुनीश्वरः ।
काष्ठवच्चिन्तयामास मौनस्थो निश्चलस्तराम् ॥३२॥
सर्वथा शरणं मेऽत्र परमेष्ठी पितामहः ।
एकोऽहं शुद्धबुद्धोऽहं नान्यः कोऽपि परो भुवि ॥३३॥
तदा तया च पापिन्या गाढमालिङ्गनैर्घनैः ।
मुखे मुखार्पणैर्हस्तस्पर्शनै रागजल्पनैः ॥३४॥
नग्नीभूय निजाकारदर्शनैर्मदनैस्तथा ।
इत्थं दिनत्रयं स्वामी पीडितोऽपि तथा स्थितः ॥३५॥
निश्चलं तं तरां मत्वा देवदत्ता तदा खला ।
निरर्था मुनिमुद्धृत्य गत्वा शीघ्रं श्मशानकम् ॥३६॥
धृत्वा कृष्णमुखं लात्वा पापिनी स्वगृहं गता ।
दुष्टाः स्त्रियो मदोन्मत्ताः किं न कुर्वन्ति पातकम् ॥३७॥

तत्र प्रेतवने स्वामी कायोत्सर्गेण धीरधीः ।
यावत्संतिष्ठते दक्षस्तत्त्वचिन्तनतत्परः ॥३८॥

तावत्सा व्यन्तरी पापा व्योममार्गे भयातुरी ।
पर्यटन्ती विमानस्य स्खलनाद्वीक्ष्य तं मुनिम् ॥३९॥

जगौ रे हं तवार्त्तेन मृत्वा जातास्मि देवता ।
त्वं च केनापि देवेन रक्षितोऽसि सुदर्शन ॥४०॥

इदानीं कः परित्राता तव त्वं ब्रूहि मे शठ ।
गदित्वेति महाकोपादुपसर्गं सुदारुणम् ॥४१॥

कर्तुं लग्ना तदागत्य मुनेः पुण्यप्रभावतः ।
सोऽपि यक्षः सुधीर्भक्तो वारयामास तां सुरीम् ॥४२॥

सापि सप्तदिनान्युच्चैर्युद्धं कृत्वा सुरेण च ।
मानभङ्गं तरां प्राप्य रात्रिर्वा भास्कराद्गता ॥४३॥

तदा सुदर्शनः स्वामी तस्मिन् घोरोपसर्गके ।
ध्यानावासे स्थितस्तत्र मेरुवन्निश्चलाशयः ॥४४॥

कर्मणां क्षपणे शूरः सावधानोऽभवत्तराम् ।
क्रमस्तु प्रकृतीनां च मया किंचिन्निरूप्यते ॥४५॥

सम्यग्दृष्टिगुणस्थाने चतुर्थे भुवनोत्तमे ।
पञ्चमे च तथा षष्ठे सप्तमे वा यतीश्वरः ॥४६॥

धर्मध्यानप्रभावेन तेषु स्थानेषु वा क्वचित् ।
मिथ्यात्वप्रकृतीस्त्रेधा चतस्रो दुःकषायजाः ॥४७॥

देवायुर्नारकायुश्च पश्वायुः पापकारणम् ।
दशैताः प्रकृतीर्हत्वा पूर्वमेव मुनीश्वरः ॥४८॥

अष्टमे च गुणस्थाने क्षपकश्रेणिमाश्रितः ।
अपूर्वकरणो भूत्वा स्थित्वा च नवमे सुधीः ॥४९॥

शुक्लध्यानस्य पूर्वेण पादेन परमार्थवित् ।
नाम्ना पृथक्त्ववीतर्कवीचारेण विचारवान् ॥५०॥

समातपचतुर्जातित्रिनिद्राश्वभ्रयुग्मकम् ।
स्थावरत्वं च सूक्ष्मत्वं पशुद्वयुद्योतकं तथा ॥५१॥

अनिवृत्तगुणस्थानपूर्वभागे च षोडश ।
क्षयं नीत्वा द्वितीये च कषायाष्टकमुख्यकैः ॥५२॥

क्लैव्यं परे ततः स्त्रैणं चतुर्थे भागके ततः ।
परे हास्यादिषट्कं च षष्ठे पुंवेदकं तथा ॥५३॥

क्रोधं मानं च मायां च त्रिभागेषु पृथक् पृथक् ।
षट्त्रिंशत्प्रकृतीर्हत्वा नवमे चैवमादिकम् ॥५४॥

सूक्ष्मसांपरायकेऽपि सूक्ष्मलोभं निहत्य च ।
क्षीणमोहगुणस्थाने द्वितीयशुक्लमाश्रितः ॥५५॥

निद्रां सप्रचलां हित्वा चोपान्त्यसमये सुधीः ।
अन्तिमे समये तत्र चतस्रो दृष्टिघातिकाः ॥५६॥

पञ्चधा ज्ञानहाः पञ्चप्रकृतीः पञ्च विघ्नकाः ।
इत्येवं प्रकृतीः प्रोक्तास्त्रिषष्टिं घातिकर्मणाम् ॥५७॥

हत्वाभूत्तत्क्षणे स्वामी केवलज्ञानभास्करः ।
सयोगाख्यगुणस्थानवर्ती सर्वप्रकाशकः ॥५८॥

संयत सर्वदर्शी च वीर्यमानन्त्यमाश्रितः ।
अनन्तसुखसंपन्नः परमानन्ददायकः ॥५९॥

अन्तकृत्केवली स्वामी वर्द्धमानजिनेशिनः ।
स जीयाद् भव्यजीवानां शर्मणे शरणं जिनः ॥६०॥

केवलज्ञानसंपत्तिं मत्वा स्वासनकम्पनात् ।
सर्वे देवेन्द्रनागेन्द्रचन्द्रार्काद्याः सुरेश्वराः ॥६१॥

चतुर्निकायदेवौघैः स्वाङ्गनाभिः समन्विताः ।
समागत्य महाभक्त्या कृत्वा गन्धकुटीं शुभाम् ॥६२॥

सिंहासनं लसत्कान्ति सच्छत्रचामरद्वयम् ।
पुष्पवृष्टिं प्रकुर्वन्ति परमानन्दनिर्भराः ॥६३॥

जलगन्धाक्षतैः पुष्पैः पीयूषै रत्नदीपकैः ।
कृष्णागरुलसद्धूपैः फलैर्नानाप्रकारकैः ॥६४॥

गीतनृत्यादिवादित्रसहस्रैः पापनाशनैः ।
पूजयित्वा जगत्पूज्यं तं जिनं श्रीसुदर्शनम् ॥६५॥

वीतरागं क्षणार्धेन लोकालोकप्रदर्शिनम् ।
स्तुतिं कर्तुं प्रवृत्तास्ते सारसंपत्तिदायिनीम् ॥६६॥

जय देव दयासिन्धो जय त्वं केवलेक्षण ।
जय त्वं सर्वदर्शी च जयानन्तप्रवीर्यभाक् ॥६७॥

अनन्तसुखसंतृप्त जय त्वं परमोदयः ।
जय त्वं त्रिजगत्पूज्य दोषदावाग्नितोयदः ॥६८॥

सर्वोपसर्गजेता त्वं सर्वसंदेहनाशकः ।
भव्यानां भवभीरूणां संसाराम्भोधितारकः ॥६९॥

सद्ब्रह्मचारिणां घोरब्रह्मचारी त्वमेव हि ।
तपस्विनां महातीव्रतपःकर्त्ता भवानहो ॥७०॥

हितोपदेशको देव त्वं भव्यानां कृपापरः ।
प्रतापिनां प्रतापी त्वं कर्मशत्रुक्षयंकरः ॥७१॥

बन्धूनां त्वं महाबन्धुर्भव्यसंदोहपालकः ।
लोकद्वयमहालक्ष्मीकारणं त्वं जगत्प्रभो ॥७२॥

स्वामिंस्ते गुणवाराशेः पारं को वा प्रयाति च ।
किं वयं जडतां प्राप्ताः स्तुतिं कर्तुं क्षमाः क्षितौ ॥७३॥

तथापि ते स्तुतिर्देव भव्यानां शर्मकारिणी ।
अस्माकं संभवत्वत्र संसाराम्भोधितारिणी ॥७४॥

इत्यादिकं स्तुतिं कृत्वा सर्वे शक्रादयोऽमराः ।
सर्वराजप्रजोपेता नमस्कृत्य पुनः पुनः ॥७५॥
स्वहस्तौ कुड्मलीकृत्य धर्मश्रवणमानसाः ।
स्वामिनस्ते मुखाम्भोजे दत्तनेत्राः सुखं स्थिताः ॥७६॥

तदा स्वामी कृपासिन्धुः स्वभावादेव संजगौ ।
स्वदिव्यभाषया भव्यान् परमानन्दमुद्गिरन् ॥७७॥
यत्याचारं जगत्सारं मुनीनां शर्मकारणम् ।
मूलोत्तरैर्गुणैः पूतं रत्नत्रयमनोहरम् ॥७८॥
दानं पूजां व्रतं शीलं सोपवासं जगद्धितम् ।
सारसम्यक्त्वसंयुक्तं श्रावकाणां सुखप्रदम् ॥७९॥
नित्यं परोपकारं च धर्मिणां सुमनःप्रियम् ।
धर्मं जगौ गुणाधीशः सर्वसत्त्वहितंकरम् ॥८०॥
तथा स्वामी जगादोच्चैः सप्त तत्त्वानि विस्तरात् ।
षड् द्रव्याणि तथा सर्वत्रलोक्यस्थितिसंग्रहम् ॥८१॥
पुण्यपापफलं सर्वं कर्मप्रकृतिसंचयम् ।
यं कंचित्तत्त्वसद्भावं तं सर्वं जिनभाषितम् ॥८२॥
श्रुत्वा ते भव्यसंदोहाः परमानन्दनिर्भराः ।
जयकोलाहलैरुच्चैस्तं नमन्ति स्म भक्तितः ॥८३॥
तदा तस्य समालोक्य केवलज्ञानसंपदाम् ।
व्यन्तरी सा तमानम्य सारसम्यक्त्वमाददे ॥८४॥
सत्यं ये पापिनश्चापि भूतले साधुसंगमात् ।
तेऽत्र श्रद्धा भवत्युच्चैरयः स्वर्णं यथा रसात् ॥८५॥
तथातिशयमाकर्ण्य केवलज्ञानसंभवम् ।
सुकान्तपुत्रसंयुक्ता सज्जनैः परिवारिता ॥८६॥
मनोरमा समागत्य तं विलोक्य जिनेश्वरम् ।
धर्मानुरागतो नत्वा समभ्यर्च्य सुभक्तितः ॥८७॥
संसारदेहभोगेभ्यो विरक्ता सुविशेषतः ।
सुकान्तं सुतमापृच्छ्य क्षान्त्वा सर्वान् प्रियोक्तिभिः ॥८८॥
त्रिधा सर्वं परित्यज्य वस्त्रमात्रपरिग्रहा ।
तत्र दीक्षां समादाय शर्मदां परमादरात् ॥८९॥

भूत्वार्यिका सती पूता जिनोक्तं सुतपः शुभम् ।
संचकार जगच्चेतोरञ्जनं दुःखभञ्जनम् ॥९०॥
सत्यं कुलस्त्रियो नित्यं न्यायोऽयं परमार्थतः ।
स्वस्वामिना धृतो मार्गो ध्रियते यच्छुभोदयः ॥९१॥
पण्डिता धात्रिका सा च देवदत्ता च सा किल ।
पुण्याङ्गना तमानम्य निन्दां कृत्वा निजात्मनः ॥९२॥
स्वयोग्यानि व्रतान्याशु स्वीचक्राते गुणाश्रिते ।
अहो सतां प्रसङ्गेन किं न जायेत भूतले ॥९३॥
इत्येवं परमानन्ददायिनी भव्यतायिनी ।
केवलज्ञानसंपत्तिः सुदर्शनजिनेशिनः ॥९४॥
सर्वदेवेन्द्रनागेन्द्रखेचराद्यैः समर्चिता ।
अस्माकं कर्मणां शान्त्यै भवत्वत्र शुभोदया ॥९५॥
इति विततविभूतिः केवलज्ञानमूर्तिः
सकल-सुखविधाता प्राणिनां शान्तिकर्ता ।
जयतु गुणसमुद्रोऽनन्तवीर्यैकमुद्र-
स्त्रिभुवनजनपूज्यः श्रीजिनो भव्यबन्धुः ॥९६॥

इति श्रीसुदर्शनचरिते पञ्चनमस्कारमाहात्म्यप्रदर्शके मुमुक्षुश्रीविद्यानन्दिविरचिते श्रीसुदर्शनकेवलज्ञानोत्पत्तिव्यावर्णनो नाम एकादशोऽधिकारः ।

द्वादशोऽधिकारः

अथ श्री केवलज्ञानी सुदर्शनसमाह्वयः ।
सत्यनामा जगद्बन्धुर्लोकालोकप्रकाशकः ॥१॥

स्व-स्वभावेन पूतात्मा भव्यपुण्योदयेन च ।
अनिच्छोऽपि जगत्स्वामी स्ववाक्यामृतवर्षणैः ॥२॥

भव्यौघांस्तर्पयन्नित्यं सुरासुरसमर्चितः ।
विहारं सुविधायोच्चैः परमानन्ददायकः ॥३॥

अन्ते च स्वायुषः स्वामी शेषकर्मक्षयोद्यतः ।
विभूतिं तां परित्यज्य छत्रचामरकादिजाम् ॥४॥

निरालम्बं जिनः स्थित्वा शुभे देशे क्वचित्प्रभुः ।
मौनी स्वामी समासाद्य पञ्चलघ्वक्षरस्थितिम् ॥५॥

अयोगिकेवली देवो द्वौ गन्धौ रसपञ्चकम् ।
पञ्चवर्णाश्रिताः पञ्च प्रकृतीः स यतीश्वरः ॥६॥

पञ्चधा वपुषां स्वामी बन्धनानि तथा मुनिः ।
पञ्चधा च शरीराणि संघातान् पञ्च कीर्तितान् ॥७॥

संहननषट्कं चापि संस्थानानि च तानि षट् ।
देवगत्यानुपूर्व्यैश्च विहायोगतियुग्मकम् ॥८॥

परं घातोपघातौ चोच्छ्वासं चागुरुलाघवम् ।
अयशःकीर्तिमनादेयं शुभं चाशुभमेव च ॥९॥

सुस्वरं दुःस्वरं चापि स्थिरत्वं चास्थिरत्वयुक् ।
स्पर्शाष्टकं च निर्माणमेकं स्थानप्रमाणवाक् ॥१०॥

अङ्गोपाङ्गमपर्याप्तिं दुर्भगत्वं च दुःस्वरम् ।
सप्रत्येकशरीरं च नीचैर्गोत्रं च पापकृत् ॥११॥

वेद्यं चान्यतरच्चैवं द्वासप्ततिमिति प्रभुः ।
उपान्त्यसमये तत्र समुच्छिन्नक्रियाख्यतः ॥१२॥

सुध्यानात्प्रकृतीः क्षिप्त्वा तथासौ चरमक्षणे ।
आदेयत्वं च मानुष्यगतिगत्यानुपूर्विके ॥१३॥

स पञ्चेन्द्रियजातिं च यशःकीर्तिमनुत्तरान् ।
पर्याप्तिं च त्रसत्वं च बादरत्वं च यन्मतम् ॥१४॥

सुभगत्वं मनुष्यायुरुच्चैर्गोत्रं च वेद्यकम् ।
श्रीमत्तीर्थकरत्वं च प्रकृतीः स त्रयोदश ॥१५॥

हत्वैताः समयेनाशु संप्राप्तो मोक्षमक्षयम् ।
सिद्धो बुद्धो निराबाधो निष्क्रियः कर्मवर्जितः ॥१६॥

किंचिन्न परित्यक्तकायाकारोऽप्यकायकः ।
त्रैलोक्यशिखरारूढस्तनुवाते स्थिरं स्थितः ॥१७॥

प्रसिद्धाष्टगुणैर्युक्तः सम्यक्त्वाद्यैरनुत्तरैः ।
कर्मबन्धननिर्मुक्तश्चोर्ध्वगामी स्वभावतः ॥१८॥

एरण्डबीजवद्वह्निशिखावच्च तदा द्रुतम् ।
निर्मलालाबुवत् स्वामी गत्वा त्रैलोक्यमस्तके ॥१९॥

वृद्धिह्रासविनिर्मुक्तस्तनुवाते प्रतिष्ठितः ।
अनन्तसुखसंतृप्तः शुद्धचैतन्यलक्षणः ॥२०॥

काले कल्पशते चापि विक्रियारहितोऽचलः ।
अभावाद्धर्मद्रव्यस्य नैव याति ततः परम् ॥२१॥

त्रिकालोत्पन्नदेवेन्द्रनागेन्द्रखचरेन्द्रजम् ।
भोगभूमिमनुष्याणां यत्सुखं चक्रवर्तिनाम् ॥२२॥

अनन्तगुणितं तस्मात्सुखं भुङ्क्ते च नित्यशः ।
समयं समयं स्वामी योऽसौ मे शर्म संक्रियात् ॥२३॥

अन्ये सर्वेऽपि ये सिद्धाः प्रबुद्धा गुणविग्रहाः ।
कालत्रयसमुत्पन्नाः पूजिता वन्दिताः सदा ॥२४॥

शुद्धचैतन्यसद्भावा जन्ममृत्युजरातिगाः ।
सन्तु ते कर्मणां शान्त्यै समाराध्या जगद्धिताः ॥२५॥

धात्रीवाहनभूपाद्या ये तदा मुनयोऽभवन् ।
ते सर्वे स्वतपोयोगैः प्राप्ताः स्वर्गापवर्गकम् ॥२६॥

यं सुमन्त्रं समाराध्य गोपालोऽपि जगद्धितः ।
एवं सुदर्शनो जातस्तत्र किं वर्ण्यते परम् ॥२७॥

अन्येऽपि बहवो भव्याः परमेष्ठिपदान्यलम् ।
समुच्चार्य जगत्सारं सुखं प्रापुर्निरन्तरम् ॥२८॥

तथा यं मन्त्रमाराध्य परमानन्ददायकम् ।
कुर्कुरोऽपि सुरो जातः का वार्ता भव्यदेहिनाम् ॥२९॥

तेषां सारफलं लोके कोऽत्र वर्णयितुं क्षमः ।
इन्द्रो वा धरणेन्द्रो वा विना श्रीमज्जिनेश्वरैः ॥३०॥

अन्योऽपि यो महाभव्यो मन्त्रमेतं जगद्धितम् ।
आराधयिष्यति प्रीत्या स भविष्यति सत्सुखी ॥३१॥

तस्माद्भव्यैः सुखे दुःखे मन्त्रोऽयं परमेष्ठिनाम् ।
समाराध्यः सदासारस्वर्गमोक्षैककारणम् ॥३२॥

निशि प्रातश्च मध्याह्ने सन्ध्यायां वात्र सर्वदा ।
मन्त्रराजोऽयमाराध्यो भव्यैर्नित्यं सुखप्रदः ॥३३॥

अस्य स्मरणमात्रेण मन्त्रराजस्य भूतले ।
सर्वे विघ्नाः प्रणश्यन्ति यथा भानूदये तमः ॥३४॥

यथा सर्वेषु वृक्षेषु कल्पवृक्षो विराजते ।
तथायं सर्वमन्त्रेषु मन्त्रराजो विराजते ॥३५॥

इत्यादिकं समाकर्ण्य मन्त्रस्यास्य प्रभावकम् ।
सर्वकार्येषु मन्त्रोऽयं स्मरणीयः सदा बुधैः ॥३६॥
येन सर्वत्र भव्यानां मनोवाञ्छितसंपदाः ।
धनं धान्यं कुलं रम्यं भवन्त्यत्र सुनिश्चितम् ॥३७॥

सुदर्शनजिनस्योच्चैश्चरित्रं पुण्यकारणम् ।
पठन्ति पाठयन्त्यत्र लेखयन्ति लिखन्ति ये ॥३८॥

ये शृण्वन्ति महाभव्या भावयन्ति मुहुर्मुहुः ।
ते लभन्ते महासौख्यं देवदेवेन्द्रसंस्तुतम् ॥३९॥

श्रीगौतमगणीन्द्रेण प्रोक्तमेतन्निशम्य च ।
सच्चरित्रं तमानम्य संतुष्टः श्रेणिकप्रभुः ॥४०॥

अन्यैर्भूरिजनैः सार्धं परमानन्दनिर्भरैः ।
प्राप्तो राजगृहं रम्यं स सुधीर्भावितीर्थकृत् ॥४१॥

गन्धारपुर्यां जिननाथगेहे छत्रध्वजाद्यैः परिशोभतेऽत्र ।
कृतं चरित्रं स्वपरोपकारकृते पवित्रं हि सुदर्शनस्य ॥४२॥

नन्दत्विदं सारचरित्ररत्नं भव्यैर्जनैर्भावितमुत्तमं हि ।
सत्केवलज्ञानिसुदर्शनस्य संसारसिन्धौ वरयानपात्रम् ॥४३

स श्रीकेवललोचनो जिनपतिः सर्वेन्द्रवृन्दार्चितो
भव्याम्भोरुहभास्करो गुणनिधिर्मिथ्यातमोध्वंसकृत् ।
सच्छीलाम्बुधिचन्द्रमाः शुचितरो दोषौघमुक्तः सदा
नाम्ना सारसुदर्शनोऽत्र सततं कुर्यात् सतां मङ्गलम् ॥४४॥

अर्हत्सिद्धगणीन्द्रपाठकमुनिश्रीसाधवो नित्यशः
पञ्चैते परमेष्ठिनः शुभतराः संसारनिस्तारकाः ।
कुर्वन्त्वत्र सुखं विनाशविमुखं भव्यात्मनां निर्मलं
यन्मन्त्रोऽपि करोति वाञ्छितसुखं कीर्तिं प्रमोदं जयम् ॥४५॥

श्रीसारदासारजिनेन्द्रवक्त्रात्समुद्भवा सर्वजनैकचक्षुः ।
कृत्वा क्षमां मेऽत्र कवित्वलेशे मातेव बालस्य सुखं करोतु ॥४६॥

श्रीमूलसङ्घे वरभारतीये गच्छे बलात्कारगणेऽतिरम्ये ।
श्रीकुन्दकुन्दाख्यमुनीन्द्रवंशे जातः प्रभाचन्द्रमहामुनीन्द्रः ॥४७॥

पट्टे तदीये मुनिपद्मनन्दी भट्टारको भव्यसरोजभानुः ।
जातो जगत्त्रयहितो गुणरत्नसिन्धुः कुर्यात् सतां सारसुखं यतीशः ॥४८॥

तत्पट्टपद्माकरभास्करोऽत्र देवेन्द्रकीर्तिर्मुनिचक्रवर्ती ।
तत्पादपङ्कजसुभक्तियुक्तो विद्यादिनन्दीचरितं चकार ॥४९॥

तत्पादपट्टेऽजनि मल्लिभूषणगुरुश्चारित्रचूडामणिः
　　संसाराम्बुधितारणैकचतुरश्चिन्तामणिः प्राणिनाम् ।
सूरिश्रीश्रुतसागरो गुणनिधिः श्रीसिंहनन्दी गुरुः
　　सर्वे ते यतिसत्तमाः शुभतराः कुर्वन्तु वो मङ्गलम् ॥५०॥

गुरूणामुपदेशेन सच्चरित्रमिदं शुभम् ।
नेमिदत्तो व्रती भक्त्या भावयामास शर्मदम् ॥५१॥

इति श्रीसुदर्शनचरिते पञ्चनमस्कारमाहात्म्यप्रदर्शके मुमुक्षुश्रीविद्या-
नन्दिविरचिते सुदर्शनमहामुनिमोक्षलक्ष्मीसंप्राप्ति-
व्यावर्णनो नाम द्वादशोऽधिकारः
समाप्तः ।

॥शुभं भवतु॥ ग्रन्थ संख्याश्लोक १३६२॥ संवत्
१५९१ वर्षे अषाढमासे शुक्लपक्षे ।

परिशिष्ट १

उद्धृतकारिकादीनामनुक्रमणिका

परिशिष्ट २

श्लोकानुक्रमणिका

[अ]

[ख]

[ग]

[घ]

[च]

[द]

[ध]

[न]

[प]

[श]

[ष]

[स]

[ह]

●

MĀṆIKACHANDRA D. J. GRANTHAMĀLĀ

* The Serial Numbers marked with asterisk are out of print.

*1. **Laghīyastraya-ādi-saṁgrahaḥ :** This vol. contains four small works : 1) *Laghīyastrayam* of Akalaṅkadeva (*c* 7th century A. D.), a small Prakaraṇa dealing with *pramāṇa, naya* and *pravacana.* Akalaṅka is an eminent logician who deserves to be remembered along with Dharmakīrti and others. His works are very important for a student of Indian logic. Here the text is presented with the Sk. commentary of Abhayacandrasūri. 2) *Svarūpasambodhana* attributed to Akalaṅka, a short yet brilliant exposition of *ātman* in 25 verses. 3-4) *Laghu-Sarvajña-siddhih* and *Bṛhat-Sarvajña-siddhih* of Anantakīrti. These two texts discuss the Jaina doctrine of Sarvajñatā. Edited with some introductory notes in Sk. on Akalaṅka, Abhayacandra and Anantakīrti by PT. KALLAPPA BHARAMAPPA NITAVE, Bombay Samvata 1972, Crown pp. 8-204, Price As. 6/-.

*2. **Sāgāra-dharmāmṛtam** of Āśādhara : Āśādhara is a voluminous writer of the 13th century A. D., with many Sanskrit works on different subjects to his credit. This is the first part of his *Dharmāmṛta* with his own commentary in Sk. dealing with the duties of a layman. PT. NATHURAM PREMI, adds an introductory note on Āśādhara and his works. Ed. by PT. MANOHARLAL, Bombay Saṁvat 1972, Crown pp. 8-246, Price As. 8/-.

*3. **Vikrāntakauravam** or **Sulocanānāṭakam** of Hastimalla (A.D. 13th century) : A Sanskrit drama in six acts. Ed. with an introductory note on Hastimalla and his works by PT. MANOHARLAL, Bombay Saṁvat 1972, Crown pp. 4-164, Price As. 6/-.

*4. **Pārśvanātha-caritam** of Vādirājasūri : Vādirāja was an eminent poet and logician of the 10th century A. D. This is a biography of the 23rd Tīrthaṅkara in Sanskrit extending over 12 cantos. Edited with an introductory note on Vādirāja and his works by PT. MANOHARLAL, Bombay Saṁvat 1973, Crown pp. 18-198, Price As. 8/-.

*5. **Maithilīkalyāṇam** or **Sītānāṭakam** of Hastimalla : A Sk. drama in 5 acts, see No. 3 above. Ed. with an introductory note on Hastimalla and his works by PT. MANOHARLAL, Bombay Saṁvat 1973, Crown pp. 4-96, Price As. 4/-.

*6. **Ārādhanāsāra** of Devasena A Prākrit work dealing with religio-didactic topics. Prākrit text with the Sk commentary of Ratnakīrtideva, edited by PT. MANOHARLAL, Bombay Saṁvat 1973, Crown pp. 128, Price As. 4/6.

*7 **Jinadattacaritam** of Guṇabhadra : A Sk. poem in 9 cantos dealing with the life of Jinadatta, edited by PT. MANOHALAL, Bombay saṁvat 1973, Crown pp. 96, Price As. 5/-.

8. **Pradyumnacarita** of Mahāsenācārya : A Sk. poem in 14 cantos dealing with the life of Pradyumna. It is composed in a dignified style. Edited by

PTS. MANOHARLAL and RAMPRASAD, Bombay Saṁvat 1973, Crown pp. 230, Price As. 8/-.

9. **Cāritrasāra** of Cāmuṇḍarāya : It deals with the rules of conduct for a house-holder and a monk. Edited by PT. INDRALAL and UDAYALAL, Bombay Saṁvat 1974, Crown pp. 103, Price As. 6/-.

*10. **Pramāṇanirṇaya** of Vādirāja : A manual of logic discussing specially the nature of Pramāṇas. Edited by PTS. INDRALAL and KHUBCHAND, Bombay Saṁvat 1974, Crown pp. 80, Price As. 5/-.

*11. **Ācārasāra** of Vīranandi : A Sk. text dealing with Darśana, Jñāna etc. Edited by PTS. INDRALAL and MANOHARLAL, Bombay Saṁvat 1974, Crown pp. 2-98, Price As 6/-.

*12. **Trilokasāra** of Nemichandra : An important Prākrit text on Jaina cosmography published here with the Sk. commentary of Mādhavacandra. Pt. Premi has written a critical note on Nemicandra and Mādhavacandra in the Introduction. Edited with an index of Gāthās by PT. MANOHARLAL, Bombay Samvat 1975, Crown pp. 10-405-20, Price Rs. 1/12/-.

*13. **Tattvānuśāsana-ādi-saṁgrahaḥ** : This vol. contains the following works. 1) *Tattvānuśāsana* of Nāgasena. 2) *Iṣṭopadeśa* of Pūjyapāda with the Sk. commentary of Āśādhara. 3) *Nītisāra* of Indranandi. 4) *Mokṣapañcāśikā*. 5) *Śrutāvatāra* of Indranandi. 6) *Adhyātmataraṅgiṇī* of Somadeva. 7) *Bṛhat-pañca-namaskāra* or *Pātrakesarī-stotra* of Pātrakesarī with a Sk. commentary. 8) *Adhyātmāṣṭaka* of Vādirāja. 9) *Dvā-*

trimśikā of Amitagati 10) *Vairāgyamaṇimālā* of Śrīcandra. 11) *Tattvasāra* (in Prākrit) of Devasena. 12) *Śrutaskandha* (in Prākrit) of Brahma Hemacandra. 13) *Ḍhāḍasī-gāthā* in Prākrit with Sk. chāyā. 14) *Jñānasāra* of Padmasiṁha, Prākrit text and Sk. chāyā. PT. PREMI has added short critical notes on these authors and their works Edited by PT. MANOHARLAL, Bombay Saṁvat 1975, Crown pp. 4-176, Price As. 14/-.

*14. **Anagāra-dharmāmṛta** of Āśādhara · Second part of the *Dharmāmṛta* dealing with the rules about the life of a monk. Text and author's own commentary. Edited with verse and quotation Indices by PTS BANSIDHAR and MANOHARLAL, Bombay Samvat 1976, Crown pp. 692-35, Price Rs. 3/8/-.

*15. **Yuktyanuśāsana** of Samantabhadra : A logical Stotra which has weilded great influence on later authors like Siddhasena, Hemacandra etc Text published with an equally important commentary of Vidyānanda. There is an introductory note on Vidyānanda by PT. PREMI. Ed by PTS. INDRALAL and SHRILAL, Bombay Saṁvat 1977, Crown pp 6-182, Price As. 13/.

*16. **Nayacakra-ādi-saṁgraha** : This vol. contains the following texts 1) *Laghu-Nayacakra* of Devasena, Prākrit text with Sk chāyā. 2) *Nayacakra* of Devasena, Prākrit text and Sk. chāyā 3) *Ālāpapaddhati* of Devasena. There is an introductory note in Hindī on Devasena and his *Nayacakra* by PT. PREMI. Edited by PT. BANSIDHARA with Indices, Bombay Saṁvat 1977, Crown pp. 42-148, Price As 15/-.

*17. **Ṣaṭprābhṛtādi-saṁgraha** : This vol. contains the following Prākrit works of Kundakunda of venerable authority and antiquity. 1) *Darśana-prābhṛta*, 2) *Cāritra-prābhṛta*, 3) *Sūtra-prābhṛta*, 4) *Bodha-prābhṛta*, 5) *Bhāva-prābhṛta*, 6) *Mokṣa-prābhṛta*, 7) *Liṅga-prābhṛta*, 8) *Śīla-prābhṛta*, 9) *Rayaṇasāra* and 10) *Dvādaśānuprekṣā*. The first six are published with the Sk. commentary of Śrutasāgara and the last four with the Sk. chāyā only. There is an introduction in Hindī by PT. PREMI who adds some critical information about Kundakunda, Śrutasāgara and their works. Edited with an Index of verses etc. by PT. PANNALAL SONI, Bombay Saṁvat 1977, Crown pp. 12-442-32, Price Rs 3/.

*18. **Prāyaścittādi-saṁgraha** : The following texts are included in this volume. 1) *Chedapiṇḍa* of Indranandi Yogīndra, Prākrit text and Sk. chāyā. 2) *Chedaśāstra* or *Chedanavati*, Prākrit text and Sk. chāyā and notes. 3) *Prāyaścitta-cūlikā* of Gurudāsa, Sk. text with the commentary of Nandiguru. 4) *Prāyaścittagrantha* in Sk. verses by Bhaṭṭākalaṅka. There is a critical introductory note in Hindī by PT. PREMI. Edited by PT. PANNALAL SONI, Bombay Samvat 1978, Crown pp. 16-172-12, Price Rs. 1/2/-.

*19. **Mūlācāra** of Vaṭṭakera, part I : An ancient Prākrit text in Jaina Śaurasenī, Published with Sk. chāyā and Vasunandi's Sk. commentary. A highly valuable text for students of Prākrit and ancient Indian monastic life. Edited by PTS. PANNALAL, GAJADHARALAL and SHRILAL, Bombay Saṁvat 1977, Crown pp. 516, Price Rs. 2/4/-.

20. **Bhāvasaṁgraha-ādiḥ** : This vol. contains the following works 1) *Bhāvasaṁgraha* of Devasena, Prākrit text and Sk. chāyā. 2) *Bhāvasaṁgraha* in Sk. verse of Vāmadeva Paṇḍita 3) *Bhāva-tribhaṅgī* or *Bhāvasaṁgraha* of Śrutamuni, Prākrit text and Sk. chāyā. 4) *Āsravatribhṅgī* of Śrutamuni, Prākrit text and Sk chāyā. There is a Hindī Introduction with critical remarks on these texts by PT. PREMI. Edited with an Index of verses by PT. PANNALAL SONI, Bombay Saṁvat 1978, Crown pp 8-284-28, Price Rs. 2/4/-.

21. **Siddhāntasāra-ādi-Saṁgraha** : This vol. contains some twentyfive texts. 1) *Siddhāntasāra* of Jinacandra, Prākrit text, Sk chāyā and the commentary of Jñānabhūṣaṇa. 2) *Yogasāra* of Yogicandra, Apabhraṁśa text with Sk. chāyā. 3) *Kallāṇāloyaṇā* of Ajitabrahma, Prākrit text with Sk. chāyā. 4) *Amṛtāśīti* of Yogīndradeva, a didactic work in Sanskrit 5) *Ratnamālā* of Sivakoṭi. 6) *Śāstrasārasamuccaya* of Māghanandi, a Sūtra work divided in four lessons. *Arhatpravacanam* of Prabhācandra, a Sūtra work in five lessons. 8) *Āptasvarūpam*, a discourse on the nature of divinity. 9) *Jñānalocanastotra* of Vādirāja (Pomarājasuta). 10) *Samavasaraṇastotra* of Viṣṇusena. 11) *Sarvajñastavana* of Jayānandasūri. 12) *Pārśvanāthasamasyā-stotra*. 13) *Citrabandhastotra* of Guṇabhadra. 14) *Maharṣi*-stotra (of Āśādhara). 15) *Pārśvanāthastotra* or *Lakṣmīstotra* with Sk. commentary. 16) *Neminātha-stotra* in which are used only two letters viz. *n* & *m*. 17) *Śaṅkhadevāṣṭaka* of Bhānukīrti. 18) *Nijātmāṣṭaka* of Yogīndradeva in Prākrit. 19) *Tattvabhāvanā*

or *Sāmāyika-pāṭha* of Amitagati. 20) *Dharmarasāyaṇa* of Padmanandi. Prākrit text and Sk chāyā 21) *Sārasamuccaya* of Kulabhadra. 22) *Aṁgapaṇṇatti* of Śubhacandra Prākrit text and Sk. chāyā. 23) *Śrutāvatāra* of Vibudha Śrīdhara. 24) *Śalākānikṣepana-niṣkāsana-vivaraṇam.* 25) *Kalyāṇamālā* of Āśādhara. PT. PREMI has added critical notes in the Introduction on some of these authors. Edited by PT. PANNALAL SONI. Bombay Samvat 1979 Crown pp. 32-324, Price Rs. 1/8/-.

*22. **Nītivākyāmṛtam** of Somadeva : An important text on Indian Polity, next only to *Kauṭilya-Arthaśāstra.* The Sūtras are published here along with a Sanskrit commentary. There is a critical Introduction by PREMI comparing this work with Arthaśāstra. Edited by PT. PANNALAL SONI, Bombay Saṁvat 1979, Crown pp. 34-426, Price Rs. 1/12/-.

*23. **Mūlācāra** of Vaṭṭakera, part II : Prākrit text, Sk. chāyā and the commentary of Vasunandi, see No. 19 above. Bombay Saṁvat 1980, Crown pp. 332, Price Rs. 1/8/-.

24. **Ratnakaraṇḍaka-śrāvakācāra** of Samantabhadra : With the Sanskrit commentary of Prabhācandra. There is an exhaustive Hindī Introduction by PT. JUGAL KISHORE MUKTHAR, extending over more than pp. 300, dealing with the various topics about Samantabhadra and his works. Bombay Saṁvat 1982, Crown pp. 2-84-252-114, Price Rs. 2/-.

25. **Pañcasaṁgrahaḥ** of Amitagati : A good compendium in Sanskrit of the contents of *Gommaṭasāra*. Edited with a note on the author and his works by PT. DARBARILAL. Bombay 1927, Crown pp. 8-240, Price As. 13/-.

26. **Lāṭīsaṁhitā** of Rājamalla : It deals with the duties of a layman and its author was a contemporary of Akbar to whom references are found in his compositions. There is an exhaustive Introduction in Hindī by PT. JUGALKISHORE. Edited by PT. DARBARILAL, Bombay Saṁvat 1948, Crown pp. 24-136, Price As 8/-.

27. **Purudevacampū** of Arhaddāsa : A Campū work in Sanskrit written in a high-flown style. Edited with notes by PT JINADASA, Bombay Samvat 1985, Crown pp. 4-206, Price As. 12/-.

28. **Jaina-Śilālekha-saṁgraha** : It is a handy volume living the Devanāgarī version of *Epigraphia Carnatica* II (Revised ed.) with Introduction, Indices etc. by PROF. HIRALAL JAIN, Bombay 1928, Crown pp. 16-164-428-40, Price Rs. 2/8-.

29-30-31. **Padmacarita** of Raviseṇa : This is the Jaina recension of Rāma's story and as such indispensable to the students of Indian epic literature. It was finished in A. D. 676, and it has close similarities with *Paümcariu* of Vimala (beginning of the Christian era). Edited by PT. DARBARILAL, Bombay Saṁvat 1985, vol. i, pp. 8-512 : vol. ii, pp. 8-436 ; vol. iii, pp. 8-446, Thus pp. about 1400 in all, Price Rs. 4/8/-.

32-33. **Harivaṁśa-purāṇa** of Jinasena I : This is the Jaina recension of the Kṛṣṇa legend. These two volumes are very useful to those interested in Indian epics. It was composed in A. D. 783 by Jinasena of the Punnāṭa-saṁgha. There is a Hindī Introduction by PT. PREMIJI. Edited by PT. DARBARILAL, Bombay 1930, vol. i and ii, pp. 48-12-806, Price Rs. 3/8/-.

34. **Nītivākyāmṛtam,** a supplement to No. 22 above : This gives the missing portion of the Sanskrit commentary, Bombay Saṁvat 1989, Crown pp. 4-76, Price As. 4/-.

35. **Jambūsvāmi-caritam** and **Adhyātma-kamalamārtaṇḍa** of Rājamalla : See No. 26 above. Edited with an Introduction in Hindī by PT. JAGADISHCHANDRA, M. A., Bombay Saṁvat 1993, Crown pp. 18-264-4, Price Rs. 1/8/.

36. **Triṣaṣṭi-smṛti-śāstra** of Āśādhara : Sanskrit text and Marāṭhī rendering. Edited by PT. MOTILAL HIRACHANDA, Bombay 1937, Crown pp. 2-8-166, Price As. 8/-.

37. **Mahāpurāṇa** of Puṣpadanta, Vol. I **Ādipurāṇa** (Saṁdhis 1-37) : A Jaina Epic in Apabhraṁśa of the 10th century A. D. Apabhraṁśa Text, Variants, explanatory Notes of Prabhācandra. A model edition of an Apabhraṁśa text, Critically edited with an Introduction and Notes in English by DR. P. L. VAIDYA, M. A., D. Litt., Bombay 1937, Royal 8vo pp. 42-672, Price Rs. 10/-.

37 (a). Rāmāyaṇa portion separately issued, Price Rs, 2.50.

38. **Nyāyakumudacandra** of Prabhācandra Vol. I: This is an important Nyāya work, being an exhaustive commentary on Akalaṅka's *Laghīyastrayam* with Vivṛti (see No. 1 above). The text of the commentary is very ably edited with critical and comparative foot-notes by PT. MAHENDRAKUMARA. There is a learned Hindī Introduction exhaustively dealing with Akalaṅka, Prabhācandra, their dates and works etc. written by Pt. KAILASCHANDRA. A model edition of a Nyāya text. Bombay 1938, Roval 8 vo pp 20-126-38-402-6, Price Rs. 8/.

39. **Nyāyakumudacandra** of Prabhācandra, Yol. II: See No. 38 above. Edited by PT. MAHENDRAKUMAR SHASTRI who has added an Introduction Hindī dealing with the contents of the work and giving some details about the author. There is a Table of contents and twelve Appendices giving useful Indices Bombay 1941. Royal 8vo. pp. 20+94+403-930, Price Rs. 8/8/-

40. **Varāṅgacaritam** of Jaṭā-Simhanandi : A rare Sanskrit Kāvya brought to light and edited with an exhaustive critical Introduction and Notes in English by PROF. A. N. UPADHYE, M. A., Bombay 1938, Crown pp. 16+56+392, Price Rs. 3/-.

41. **Mahāpurāṇa** of Puṣpadanta, Vol. II (Saṁdhis 38-80) : See No. 37 above. The Apabhraṁśa Text critically edited to the variant Readings and Glosses, along with an Introduction and five Appendices by

DR. P.L. VAIDYA, M.A.,D.Litt., Bombay 1940. Royal 8vo. pp. 24+570. Price Rs. 10/-.

42. **Mahāpurāṇa** of Puṣpadanta, Vol. III (Saṁdhis 81-102) : See No. 37 and 40 above. The Apabhraṁśas Text critically edited with variant Readings and Glosses by DR. P. L. VAIDYA, M.A., D. Litt. The Introduction covers a biography of Puṣpadanta, discussing all about his date, works, patrons and metropolis (Mānyakheṭa). PT. PREMI'S essay 'Mahākavi Puspadanta' in Hindī is included here. Bombay 1941. Royal 8vo pp. 32+28+314. Price Rs. 6/-.

42(a). **Harivaṁśa** portion is separately issued. Price Rs 2 50.

43. **Ajanāpavanaṁjaya-nāṭakam** and **Subhadrā-nāṭikā** of Hastimalla : Two Sanskrit Dramas of Hastimalla (see also No 3 above). Critically edited by PROF M. V. PATWARDHAN. The Introduction in English is a well documented essay on Hastimalla and his four plays which are fully studied. There is an Index of stanzas from all the four plays. Bombay 1950. Crown pp. 8+68+120+128. Price Rs. 3/-.

44. **Syādvādasiddhi** of Vādībhasiṁha : Edited by PT. DARBARILAL with Introductions etc. in Hindī shedding good deal of light on the author and contents of the work. Bombay 1950 Crown pp. 26+32+34+80. Price Rs. 1-50.

45. **Jaina Śilālekha-saṁgraha**, Part II (see No. 28 above) : The texts of 302 Inscriptions (following A. Guérinot's order) are given in Devanāgarī with summary

in Hindī. There is an Index of Proper Names at the end. Compiled by PT. VIJAYAMURTI, M.A. Bombay 1952. Crown pp. 4+520. Price Rs. 8/-.

46 **Jaina Śilālekha-saṁgraha,** Part III (see Nos. 28 & 45 above) : The texts of 303-846 inscriptions (following Guérinot's list) is given in Devanāgarī with summary in Hindī compiled by PT. VIJAYAMURTI, M.A. There is an Index of Proper Names at the end. The Introduction by SHRI G. C. CHAUDHARI is an exhaustive study of inscriptions. Bombay 1957. Crown pp. 8+178+592+42. Price Rs. 10/-.

47. **Pramāṇaprameyakalikā** of Narendrasena (A.D. 18th century): A Nyāya text dealing with Pramāṇa and Prameya. The Sanskrit text critically edited by Pt. DARBARILAL. The Hindī Introduction deals with the author and a number of topics connected with the contents of this work. Bhāratıya Jñānapīṭha Kashı, Varanasi 1961. Price Rs. 1.50.

48. **Jaina Śilālekha-saṁgraha,** Part IV (see Nos. 28, 45 & 46 above) : This vol. contains some 654 inscriptions along with 324 Pratimā-lekhas of Nagpur in Appendix. Compiled by DR. VIDYADHAR JOHARAPURKAR with an exhaustive study of the inscriptions in the introduction and Indexes in the end. Varanasi Vīra Nirvāṇa Saṁvat-2491, Crown pp. 10+34+506. Price Rs. 7/-.

49. **Ārādhanāsamuccayo-Yogasāra Saṁgrahaśca** : This vol. contains two small sanskrit texts— 1) Ārādhana samuccaya of Sri Ravicandra Munīndra

and 2) Yogasārasamuccaya of Sri Gurudas. Edited with indexes of verses and introductions by Dr. A. N. UPADHYE, Varanasi 1967, crown pp. 8+58. Price Re. 1/.

50. **Śṛṅgārārṇavacandrikā** of Vijayavarṇī. A hitherto unpublished work on Sanskrit poetics. Critically edited by Dr. V. M. Kulkarni with Introduction, detailed table of contents and six valuable Appendexes. Varanasi 1969, crown pp. 12+66+176. Price Rs. 3/-.

For copies please write to—

BHĀRATĪYA JÑĀNAPĪTHA

3620/21 Netaji Subhash Marg,

Delhi—6 (India).